नवनिकुंज

(सचित्र नव कहानियां)

सम्पादक—

पण्डित जगदीशनारायण तिवारी

उपन्यास-तरङ्ग-माला—१०

नव-निकुंज

सम्पादक—

पं० जगदीश नारायण तिवारी

प्रकाशक—

हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथम बार] १९८४ [मूल्य १)

विषय-सूची
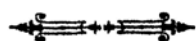
विषय	लेखक	पृ०
१—हृदयकी चोरी	(पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त')	१
२—नवजीवन	(पं० रमेशचन्द्र त्रिपाठी)	२१
३—एक पागल	(पं० भगवतीप्रसादजी वाजपेयी)	३७
४—अमर आशा	(स्व० चण्डीप्रसादजी बी० ए० 'हृदयेश')	५३
५—कर्म्म-फल	(जगदीश नारायण तिवारी)	९३
६—मन्त्र-बल	(पं० प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त')	१०५
७—गरीबकी बेटी	(बा० बैजनाथजी केडिया)	१२१
८—बेजोड़-विवाह	(,,)	१३०
९—शुद्धि	(,,)	१४३

शम्भुदयाल तिवारी बगलमें छोटी-सी पोटली दबाये हांफता हुआ जब स्टेशन पहुंचा उसके पांच मिनिट पहले ही गाड़ी छूट चुकी थी। वह बड़ी मुश्किलमें पड़ा। प्लेटफ़ार्मकी एक बेञ्चपर पोटली रखकर थोड़ी देरतक सुस्तानेके लिये वहीं बैठ गया। पैदल चलनेकी आदत न थी, आज सहसा तीन मील पैदल चलना उसके लिये दूभर हो गया। और इतनी मेहनत, इतना परिश्रम करके भी वह गाड़ी न पा सका। इससे उसके दिलको और भी चोट पहुंची।

बेञ्चपर बैठकर वह सोचने लगा—नाहक इतना प्रेम दिखानेका यह फल है। बहन जलपानके लिये इतनी तैयारी न करती तो क्यों यह नौबत आती। हज़ार मना करता रहा, देर होनेसे गाड़ी छूट जायगी ; पर कौन सुनता है ! जिसपर बीतती है, वही जानता है। मालूम नहीं, गाड़ी अब कब आयगी। जाड़ेका दिन, और मेरे साथ एक चद्दर भी नहीं। तिसपर तुर्रा यह कि रात सिरपर सवार। मुझे क्या मालूम था कि गाड़ी छूट जायगी, नहीं तो साथ एक ओढ़ना ही लेता आता।

शम्भुदयाल खानदानी लड़का था। उम्र यही १६-२० वर्षकी

होगी। काशी-विश्वविद्यालयसे हाल-ही-में एफ० ए०की परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ है। उसके माता-पिता बचपनमें ही उसे अनाथ कर गये थे। पर घरमें काफ़ी धन था। कोई रुकावट न हुई। काम मज़ेमें चलता गया। इस समय अपने घरका सर्वेसर्वा है यही शम्भुदयाल तिवारी।

इस समय शम्भुदयाल बहनके यहांसे लौट रहा था। इसकी बहनकी शादी देहातमें हुई थी, खुद भी यह देहातका रहनेवाला था, फिर भी इसे पैदल चलनेका या बोझा ढोनेका अभ्यास न था। इसकी बहनका गांव माधवपुर स्टेशनसे तीन मीलपर था, और वही स्टेशनसे सर्वापेक्षा समीपवाला गांव था। इससे नज़दीक कोई गांव,घर या दूकान न थी। स्टेशनपर भी केवल एक हलवाईकी छोटी-सी दूकान थी और स्टेशन-मास्टरका छोटा-सा सरकारी कैबिन, इसके सिवा और वहां कोई इमारत न थी।

चलते समय छोटेसे गांवमें कोई आदमी न मिल सका जो शम्भुदयालको स्टेशनतक पहुंचा आवे। एक तो भोजन आदिकी झञ्झटोंमें स्वयं ही देर हो चुकी थी। दूसरे, भोजन करके शम्भु-दयालको पैदल चलना पड़ा। बहनने, मना करते रहनेपर भी, कुछ पूड़ियां और मिठाइयां जलपानके लिये बांध दीं। लाचार होकर बेचारेको वह सब भी ढोना पड़ा।

सचमुच बड़े सङ्कटका सामना था। तीन बज रहे थे। शम्भु-दयाल थकावटसे चूर था। वह पुनः बहनके यहां लौट जाय, यह

सम्भव न था। पासमें किसी मकान अथवा झोंपड़ीका नाम-निशान भी न था। देहातका छोटा-सा स्टेशन, उसमें मुसाफ़िर-ख़ानेके नामपर केवल एक बेञ्च ही बस थी। अब आशाका केवल एक सूत्र बाक़ी था कि फ़िर गाड़ी कब आती है। यह ख़याल आते ही उसका चेहरा क्षण-भरके लिये चमक उठा। वह स्टेशन-मास्टरके कमरेमें घुसा।

स्टेशन-भरमें स्टेशनके कर्मचारी केवल स्टेशनमास्टर-साहब ही थे। वे कुलीसे लेकर स्टेशनमास्टरीतकका सारा काम स्वयं ही करते थे। शम्भुदयालने अन्दर जाकर उनसे पूछा—"महाशय, मैं इस गाड़ीसे अनुग्रहपुर जाना चाहता था, पर अभाग्यवश गाड़ी छूट गयी। मैं बड़े सङ्कटमें पड़ा हूं। क्या आप बता सकेंगे, मुझे दूसरी गाड़ी फिर कब मिलेगी?"

स्टेशनमास्टर-साहब उस समय तारकी डेमी खटखटा रहे थे। आंखपरसे चश्मा हटाकर उन्होंने बड़े ग़ौरसे एक बार शम्भुदयालको सिरसे पैरतक देखा। उसकी सूरत और अवस्थापर उन्हें तरस आ गया। वे सहानुभूति दिखलाते हुए बोले, "ओफ़, तब तो सचमुच आपको बड़ी तकलीफ़ हुई। अब गाड़ी आपको साढ़े ग्यारह बजे रातको मिलेगी। तबतक तो आपकी बड़ी दुर्गति हो जायगी।"

"यही बात है"—शम्भुदयालने उत्तर दिया—"मैं भी इसी चिन्तामें पड़ा हूं। क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता। जाड़ेकी रात सिरपर सवार है और मेरे पास एक चद्दरतक नहीं है।"

स्टेशनमास्टरने पूछा—"आप कौन वर्ण हैं ?"

कुछ रुककर शम्भुदयालने कहा—"मैं ? मैं ब्राह्मण हूं।"

स्टेशनमास्टर—"आपका शुभनाम ?"

शम्भु०—"लोग मुझे शम्भुदयाल तिवारी कहा करते हैं। आपका परिचय जाननेकी विशेष अभिलाषा है।"

स्टेशनमास्टर—"मुझे भी आपकी जातिमें ही उत्पन्न होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। मेरा नाम रामअधार पाण्डेय है।

ज़रा सकुचाते हुए शम्भुदयालने प्रश्न किया—"मैं बहुत अधिक थक गया हूं। क्या आप मुझे गाड़ीके आनेतक अपने आफ़िसमें स्थान दे सकते हैं?"

स्टेशनमास्टर—"माफ़ कीजियेगा, मैं इस बारेमें बिलकुल परतंत्र हूं। सात ही बजे ताला बन्द करके मैं भी घर चला जाता हूं। फिर गाड़ीके आनेके समय यहां आ जाया करता हूं। इससे मैं आपके लिये कुछ करनेमें असमर्थ हूं।"

अब अधिक पूछना-ताछना शम्भुदयालने बेकार समझा। वह आफ़िससे बाहर चला आया।

हलवाईकी दूकान खुली हुई थी। आशाका एक क्षीण आलोक वहां भी पहुंचता था। अपने सभी आशा-भरोसोंको उसीपर निर्भर करके वह दूकानकी ओर अग्रसर हुआ।

पांच बज रहे थे। हलवाई भी शम्भुदयालकी बहनके गांवका रहनेवाला था। वह दूकान बढ़ाकर घर जानेकी फ़िक्रमें था।

उसी समय शम्भुदयाल वहां पहुंचा। उसने समझा, कोई ग्राहक है। पूछा—"क्या चाहिये बाबू ?"

संक्षेपमें शम्भुदयाल सारी दास्तान सुना गया। सुनकर हलवाईने कहा—"सो तो है बाबू, लेकिन मैं भी तो यहां नहीं रहता। अभी दूकान बढ़ाकर मैं गांवपर चला जाऊंगा। आप परदेशी आदमी हैं। सारी दूकान आपपर छोड़कर मैं घर चला जाऊं, क्या आप ही मुझे ऐसी सलाह देंगे ?"

चिन्तित होकर शम्भुदयालने केवल—"कैसे देंगे" कहा और पुनः स्टेशनपर लौट आया।

कोई उपाय बाक़ी न था। प्रारब्धको दोष देता हुआ शम्भुदयाल आकर बेञ्चपर बैठ गया। मरना होगा तो यहीं मरूंगा, दूसरी कोई गति नहीं है।

समय बीतते देर नहीं लगती। सात बज गये। स्टेशनमास्टर घर जानेके लिये बाहर निकले। ताला लगाकर देखते हैं तो तिवारीजी अभीतक बेञ्च-ही-पर बैठे जाड़ेसे कांप रहे हैं। पाण्डेयजीने पूछा—"अभीतक आप कुछ इन्तज़ाम नहीं कर सके ?"

दिनभरकी परेशानी और मानसिक कष्टसे शम्भुदयालको बुख़ार आ गया था। लड़खड़ाती हुई ज़बानसे उसने कहा—"यहां जङ्गलमें कौनसा इन्तज़ाम करता ? मुझे बुख़ार आ गया है। मैं अब आप-ही-की शरण हूं। आप मेरी ही जातिके हैं। आप मेरी रक्षा न करेंगे तो कौन करेगा ?"

पाण्डेयजीने उत्तर दिया—"बुख़ार आ गया है। आपने मुझसे

पहले क्यों नहीं कहा ? मुझे तो स्मरण ही नहीं रहा, और आपने फिर मुझसे कहा भी नहीं। चलिये, चलिये ! मेरा घर आप-ही-का है। सुखसे जबतक चाहिये वहां रहिये।"

शम्भुदयालने कहा—"आजके पहले मैं कभी ऐसे सङ्कटमें न पड़ा था।"

इसके बाद दोनों केबिनकी ओर चले गये।

(२)

उस दिन तो शम्भुदयालका जाना हो ही न सका, उसके बाद भी वह तीन हफ़्तेतक घर न जा सका। पहले जाड़ा-बुख़ार था, अब उसने अँतराका रूप धारण किया। इसी भांति दुख-सुखसे उसके तीन हफ़्ते बीत गये। वह पाण्डेयजीके परिवारमें एकदम हिलमिल गया।

पाण्डेयजीके परिवारमें था ही कौन ? एक वे स्वयं और दूसरे उनकी लड़की माया। माया चौदह वर्षकी हो चुकी थी। अभीतक उसका विवाह न हुआ था। इसका पहला कारण तो था पाण्डेयजीकी दरिद्रता और दूसरा मायाकी सरलता। माया बड़ी सरला थी। एक छोटेसे बच्चेके और उसके स्वभावमें ज़रा भी अन्तर न था। छल-कपटसे दूर रहनेवाली भोलीभाली माया सरलताकी प्रतिमूर्ति थी। पाण्डेयजी उसको पगली कहा करते थे। शम्भुदयालने भी उसका यही नाम पसन्द किया।

बीमारीकी हालतमें पगलीने शम्भुदयालकी प्राणपणसे सेवा

की। कभी वह रात-रातभर उसके सिरमें तेल लगाती, कभी तलवे सुहलाती और कभी कोई अच्छी-सी पुस्तक पढ़कर सुनाया करती थी। इस तरह हृदयकी सारी शक्तियोंके योगसे उसने शम्भुदयाल-को अच्छा कर ही लिया। अब उसकी तबीअत सुधर चुकी थी।

यद्यपि शम्भुदयाल अब बिलकुल चङ्गा हो गया था, किन्तु फिर भी शरीरमें काफी कमज़ोरी थी। ऐसी हालतमें वह घर न जा सका, और असली बात तो यह कि शरीरमें बल आ जानेपर भी वह इस समय न जाता। क्या मालूम क्यों यहांसे जानेको उसका जी ही न चाहता था। वह मानों एक अजीब बन्धनमें बंध गया था, मानों उसे कोई अदृश्य शक्ति अपनी ओर खींच रही थी। कहनेकी ग़रज़, वह न इस समय घर लौटा और न शीघ्र लौटनेकी कोई व्यवस्था ही की।

सन्ध्याका समय था। घर सूना पड़ा हुआ था। पाण्डेयजी स्टेशनमें थे और पगली कहीं बाहर चली गयी थी। अकेला शम्भु-दयाल अपनी चारपाईपर लेटा हुआ था। आजकी सन्ध्यामें न जाने क्यों शम्भुदयालको एक असहनीय उदासीनता मालूम पड़ी। वह अधिक देरतक चारपाईपर न रह सका। एक डण्डेका सहारा लेकर बाहर निकला।

पाण्डेयजीके कैबिनके सामने ही एक आमका बगीचा था। आमके सिवा बगीचेमें महुआ, कटहल, जामुन आदिके भी पेड़ थे। बगीचा ख़ूब घना था। उसके उस पार एक बरसाती तालाब था, और उसके बाद था मैदान। शम्भुदयाल उसी ओर चला।

सन्ध्याके समय गुलाबी जाड़ा पड़ रहा था। शम्भुदयालको ठण्ढक बड़ी सुखकर प्रतीत हुई। वह टहलता-टहलता बड़ी दूर निकल गया। लौटते समय सूरज डूब रहा था। अन्धकार भूमण्डलपर अपना आधिपत्य जमा रहा था। चिड़ियां चहकती हुई अपने घोंसलोंकी ओर जा रही थीं। शम्भुदयाल भी लम्बी-लम्बी डगें भरता हुआ आमके बागके पास पहुंच गया।

वहां पहुंचकर उसने जो देखा उससे उसके आश्चर्यकी सीमा न रही। एक पेड़के नीचे, मिट्टीके चबूतरेपर बैठी हुई पगली कोई काग़ज़ देख रही थी। उसके मस्तकसे कपड़ा खिसक गया था। बाल बिखरे हुए थे, फिर भी उसका मुखमण्डल पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भांति निखरा हुआ था। अतृप्त नेत्रोंसे शम्भुदयाल उस रूपराशिका पान करने लगा।

शम्भु कबतक उस अवस्थामें रहा, कहा नहीं जा सकता। जब अन्धेरा हो आया, तो उसे चेत हुआ। सहसा वह पगलीके पास जा पहुंचा। पगली उसे देखकर चौंकी। काग़ज़को उसने आंचलमें छिपा लिया और शीघ्र ही माथेपर आंचल खींच लिया।

शम्भुसे कुछ छिपा न रहा। पगलीके हाथमें जो काग़ज़ था, वह शम्भुका ही चित्र था। वह अपने साथ अपना एक फोटो लाया था। रुग्णावस्थामें पगलीने वह तस्वीर निकाल ली थी। वह समझ गया कि जिस भांति पगली मेरे हृदयमें बस गयी है उसी भांति मैंने भी उसके दिलमें घर कर लिया है।

पगलीके निकट जाकर शम्भुदयालने पूछा—"इतने वक्त यहां बैठी-बैठी क्या करती है, पगली?"

वह कुछ उत्तर न दे सकी। एकटक शम्भुके मुंहकी ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद उसने कहा—"शम्भु-बाबू !"

बात फेरकर शम्भुने कहा—"पगली, यहां सर्दी लग रही है; चलो, हमलोग घर चलें।"

बिना कुछ कहे, पगली शम्भुके साथ हो ली।

(३)

शम्भु सोचने लगा—प्रेम भी कैसी चीज़ है। इससे किसीकी मुक्ति नहीं। अमीर हो या ग़रीब, चालाक हो या बेवकूफ़, बड़ा हो या छोटा, इसे किसीसे भय नहीं। यह सबपर अपना वार करेगा और ज़रूर करेगा। इसका वार भी ऐसा कि एक ही निशानेमें दो-दोको घायल कर दे। यही पगलीको लीजिये। अबतक खाने-खेलनेके सिवा दूसरी बातकी इसे सुध ही न थी। मौक़ा पाते ही प्रेमदेवने इसपर वार किया और यह मुझे भी अपने साथ ले मरी। कहां तो मेरी प्रतिज्ञा थी कि वकालत पास करनेके बाद शादी करूंगा और कहां आज मैंने प्रेम-सरोवरमें अपना शरीर ही बहा दिया है। मुझे उसकी सुध ही नहीं। मैंने उसकी रक्षाके लिये ज़रा भी कोशिश नहीं की। मैं अबतक कैसा अन्धा हो गया था। नहीं, नहीं, अबमें यहां बिलकुल न ठहरूंगा। एक अपरिचित बालिकाके मोहमें फंसकर मैं क्यों अपनी ज़िन्दगी ख़राब करूं, क्यों अपने सारे सङ्कल्पोंका त्याग कर दूं। यह हो नहीं सकता। मैं घर जाऊंगा और बहुत शीघ्र जाऊंगा। कल न हो सका तो परसों यहांसे प्रस्थान करना निश्चित ही है।

शम्भुने कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। अब उसे एक क्षण भी यहां रहना असह्य होने लगा। इतना समय यहां किस भांति बितावे वह न समझ सका। उसने मन बहलानेकी बहुत कोशिश की, पर उसका चित्त बराबर उदास ही होता गया। वह अपनेको अधिक संयत न कर सका।

इसी समय पासवाले कमरेसे गानेकी आवाज़ आयी। पगलीने समझा था कि शम्भु-बाबू कहीं बाहर गये हैं, इसीसे वह गा रही थी। शम्भु ध्यान देकर सुनने लगा—

* "बता दे सखि कौन गली गये श्याम ?
गोकुल ढूंढ़ा, वृन्दावन ढूंढ़ा, ढूंढ़ चुकी चहुंधाम ॥ बता दे० ॥
प्रेम-पियारे आंखके तारे, उन बिन जिऊं कैसे राम !
कुंजगलिनमें ढूंढ़ थकी मैं, नाहिं मिले रसधाम ॥ बता दे० ॥
बिन उनके यह जीवन कैसो, है इहिकर का काम ?
बिन उन प्राननाथ, जीवनधन के शरीर बेकाम ॥ बता दे० ॥
जपत रही मैं नाम सदा ही, उनकै निशि औ याम।
वे निर्दई चले मोहिं तजिके, भये विधाता वाम ॥ बता दे० ॥
बचपनमें खेली संग ही संग, तजी न कबहूं श्याम।
'मुक्त' मोहिं करि आज अकेलो, गये कहं नयनाभिराम ॥ बता दे०॥

गीत सुनकर शम्भु अपने-आपको भूल गया। क्षण-भरके लिये उसके सारे सङ्कल्प मिट्टीमें मिल गये। वह पगलीकी कोठरीकी ओर चला।

---

* ऊपरकी दो लाइनें मेरी नहीं हैं। किसकी हैं, मालूम नहीं।—"मुक्त"

दरवाज़ेपर जाकर शम्भु ठिठक गया। हाथमें एक पुस्तक लिये, केश छिटकाये, साक्षात् सरस्वतीकी भांति पगली बैठी हुई गा रही थी। उसके कोमल कोकिलकण्ठसे निकली हुई स्वर-लहरी चारों ओर गूंज रही थी। शम्भु वहीं खड़ा-खड़ा सुनने लगा—

"दयानिधि, नेक दया दरसैयो ।
जाय प्रानधन सों कहि दीजो, एक बार पुनि ऐश्रो ।
जल विहीन शफरीके जल सम, नेक दया करि जैश्रो ॥
प्राननाथ-पद-धूरि धरनके आनंद मोहिं लहैया ।
'मुक्त' काल बीतेकी बातें, नेक न याद दिवैयो ॥"

गीत समाप्त हो गया। शम्भु अन्दर चला गया। पगली लजा गयी। उसने माथेपर आंचल सरकाते हुए कहा—"आप यहीं हैं शम्भु-बाबू? मैंने समझा था, कहीं बाहर गये हैं।"

"हां, अपने कमरेमें पड़ा था।"—शम्भुने उत्तर दिया—"चित्त बड़ा उदास हो रहा था। बहुत दिन हो गये घर छोड़े। अब यहां मन नहीं लगता।"

घर जानेकी बात सुनकर पगलीका चेहरा उदास हो गया। अपना भाव छिपानेकी कोशिश करती हुई वह कहने लगी—"घर चले जाइयेगा, शम्भू-बाबू? अच्छा, यह तो बताइये शम्भु-बाबू, घरपर कभी हमलोगोंकी भी याद कीजियेगा?"

मन-ही-मन शम्भुदयाल बड़ा दुःखी हुआ। क्यों यह अप्रिय

प्रसङ्ग इस समय उठाया ? बात बदलते हुए उसने कहा—"यह कौन-सी किताब अभी पढ़ रही थी, पगली ?"

पगली फिर लज्जित हो गयी । सिर झुकाकर पुस्तक छिपाते हुए उसने कहा "योंही वह एक·········

बात पूरी न कर पायी थी कि शम्भुने उसके हाथसे पुस्तक छीन ली । पुस्तक बड़ी मोटी थी । बहुतसे कवियोंकी कविताओं-का उसमें संग्रह था । नाम था 'सङ्गीत-सागर' । वह उसके पेज उलटने-पुलटने लगा । सहसा बोल उठा—"पगली, अब मैं अधिक दिनोंतक यहां नहीं रह सकता । आखिर अपना घर-द्वार छोड़-कर तुम्हारे यहां कितने दिन रहूंगा । बुरा किया जो तुम लोगोंसे इतनी घनिष्ठता कर ली, इतना प्रेम बढ़ा लिया । जाते समय दिलमें दुःख होगा, बहुत दिनोंतक एक प्रकारकी शून्यताका आभास मिलता रहेगा । अच्छा, अन्तिम समयमें आज तुमसे एक चीज़ मांगता हूं । आजतक कुछ न मांगा था, कहो, दोगी ?"

पगलीका मुंह मलिन हो गया था । शम्भुकी बातें सुनकर वह खिल उठी । बोली—"कहिये शम्भु-बाबू, आपको क्या अदेय है । सब कुछ तो आपको ···"

पगली अधिक न कह सकी । अधिक कहनेको ज़रूरत भी न थी । शम्भुने एक गानेपर अंगुली रखकर कहा—"और कुछ नहीं, अपने सुरीले गलेसे यह गीत सुना दो । सब कुछ भूलूंगा, पर जीवनमें इसे न भूल सकूंगा ।"

पगली पहले तो कुछ लजायी, पर फिर अपनेको संभाल,

हृदयकी चोरी

पगली पहले तो कुछ लजायी, पर फिर अपनेको संभाल, उसने अपने हाथमें पुस्तक लेली। बड़े करुण स्वरसे वह गीत गाने लगी। शम्भू मन्त्र-मुग्धकी नाईं उसकी ओर ताकने लगा। [पृष्ठ १३]

उसने अपने हाथमें पुस्तक ले ली। बड़े करुण स्वरसे वह गीत गाने लगी। शम्भु मन्त्रमुग्धकी नाईं उसकी ओर ताकने लगा। गीत यह था—

"सखीरी, मोहिं लै चलु वा ठौर।
जहं वसन्त विकसित पुहुपन पै भौंर करत हैं दौर॥
जहं कोकिल पिउ पिऊ पुकारत पच्छिन कर सिरमौर।
जहं सारितनमें विमल नीर ढरकत ही रहत अथोर॥
मृग औ मृगशावकके संग जहं नाचत पपिहा मोर॥
जहं कपोत हारीत क्रौञ्च सुक बोलत मीठी बैन।
मैना अपने मधुर बोलसे धारत हियमें चैन॥
सरितामें जहं विमल मोदसों सारस करत किलोल।
"मुक्त" सुनाई परै जहां पै प्रियको मीठो बोल॥"

(४)

"हां अब चलता हूं।" शम्भुने कहा—"आजतक आपने मेरे लिये जो कुछ किया है उसे जीवनमें कभी न भूल सकूंगा। आपने जिस प्रेमके साथ आजतक मुझे पाला, मेरी सेवा-शुश्रूषा की, वह कहनेयोग्य नहीं। अन्त समयतक मैं आपकी इस सहृदयताको न भूल सकूंगा। हां, मुझे दुःख इसी बातका रहा जाता है कि मैं आपकी कुछ सेवा न कर सका। कर सकूंगा, इसकी कुछ आशा भी नहीं है।"

इतना कहकर शम्भुदयाल चुप हो गया। इतने दिनोंतक एक साथ रहनेसे पाण्डेयजीके परिवारके प्रति शम्भुके हृदयमें एक विचित्र प्रेम, एक अजीब खिंचावट पैदा हो गयी थी। सहसा इतनी सरलताके साथ वह घर न छोड़ सका। इन कई दिनोंकी प्रत्येक घटनाएं उसकी आंखोंके सामने नाचने लगीं। वह रो पड़ा।

पाण्डेयजी भी अपनेको न संभाल सके। उनकी आंखें भर आयीं। रुंधे हुए गलेसे उन्होंने कहा—"जाओ भैया, परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करें। आजतक तुम्हारे साथ रहनेसे मुझे जो सुख मिला है उसे इस जीवनमें न भूल सकूंगा। तुम भी भैया, भूलना नहीं। इस अभागेको कभी-कभी याद करते रहना। बन पड़े तो कभी भेंट करनेके लिये चले भी आया करना। मैं तुम्हें अपने बेटेसे कम नहीं समझता।"

शम्भुके अलक्ष्यमें पाण्डेयजीके गालोंपर आंसूकी दो बूंद ढरक आयीं।

शम्भुने पाण्डेयजीके चरण छूए। पाण्डेयजीने शम्भुके सिरपर हाथ फेरा। गाड़ी प्लेटफ़ार्मपर लगी हुई थी। शम्भु उसपर जा बैठा। गाड़ीकी खिड़कीके पास जाकर पाण्डेयजीने कहा—"बेटा, उस बातको न भूलना। पगलीके लिये कहीं ठौर-ठिकाना लगा दोगे तो बड़ा गुन गाऊंगा। इस ग़रीबका बड़ा एहसान—"

पाण्डेयजी पुनः रो पड़े। शम्भुने उन्हें दिलासा दिया। गाड़ी चल पड़ी।

(५)

शम्भुदयाल अपने घर आया तो उसे अन्धकार दीख पड़ने लगा। जहां देखो वहां उदासीनता, उच्छृङ्खलता। इतने मनुष्योंके होते हुए भी वह एक आदमीसे बातचीत करनेके लिये, एक आदमीका कण्ठस्वर सुननेके लिये, एक आदमीकी बनायी रसोई खानेके लिये तरसने लगा। तरह-तरहकी चिन्ताओंसे उसका मस्तिष्क भर गया। वह पागल-सा हो गया।

बहुत प्रयत्न करनेपर भी वह अधिक दिनोंतक घरपर न रह सका। शीघ्र ही काशी चला आया।

कालेज खुलनेमें अभी कई दिनकी देर थी। शम्भुको अब यह न समझ पड़ने लगा कि इतने दिन कैसे काटूं, कैसे इस चञ्चल चित्तको बहलाऊं। कुछ समझमें न आनेके कारण योंही वह दिन-रात इधर-उधर घूमने लगा।

सन्ध्याके समय शम्भुदयाल गङ्गाके तटपर गया। घाटपर निस्तब्धताका साम्राज्य था। किसी-किसी चौकीपर ब्राह्मण-देवता सन्ध्या-पूजन करते नज़र आते थे। कुछ आदमी घड़े लेकर गङ्गा-जल लेने भी आये थे। शम्भुदयाल भी एक चौकीपर जा बैठा। उसका चित्त मानों कोई खोयी हुई चीज़ ढूंढ़ रहा था। बड़े कष्टोंसे उसने अपना मन दूसरी ओर खींचा। वह सोचने लगा—"दुःख और सुखका, ख़ूबसूरती और बदसूरतीका मानों नित्य सम्बन्ध है, अच्छेद्य ऐक्य है। जहां दुःख है वहां सुख ज़रूर होगा, जहां ख़ूबसूरती है वहां बदसूरतीका होना अनिवार्य है। चन्द्रमामें कलङ्क,

गुलाबमें कांटा, अमृतमें हलाहल आदि इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। संयोग होगा तो वियोग हुए बिना न रहेगा, और वियोगी एक दिन संयोग-सुख पाकर अवश्य फूला न समायेगा। दिन कैसे आनन्दसे बीत रहे थे। पगली,—अहा! कितना सुन्दर सम्बोधन है! कितनी माधुरी भरी है इसके अन्दर !!

"उसे छोड़कर चला आया? लौटकर देखा भी नहीं? सचमुच मैं पाषाण-हृदय हूं। वह मुझसे कितना प्रेम करती थी? बीमारीमें कितनी सेवा की थी उसने?

"नहीं, बेकार है। उसके बिना जीवन व्यर्थ है। जीना असम्भव है। उसे प्राप्त करूंगा। चाहे जैसे होगा,उसे अपनाऊंगा, गलेका हार बनाऊंगा।

"आज ही, हां,आज ही पाण्डेयजीको एक पत्र लिखना होगा। उसमें सब बातें साफ़-साफ़ लिख देनी पड़ेंगी। अब लज्जासे काम न चलेगा। लज्जा करनेसे मेरा जीना असम्भव हो जायगा, मैं पागल हो जाऊंगा।"

इससे शम्भुदयालको बहुत कुछ शान्ति मिली। उसका माथा ठण्ढा हो गया। वह धीरे-धीरे होस्टलकी ओर चला।

होस्टलमें आकर शम्भुदयाल रामअधार पाण्डेयको पत्र लिखने बैठा। काग़ज़-क़लम लेकर वह टेबुलके पास तो जा बैठा, पर उसे यह न सूझा पड़ने लगा कि वह पत्र प्रारम्भ कैसे करे। कई लेटर-पेपर ख़राब करके अन्तमें उसने लिखा—

पूज्य पाण्डेयजी,

सादर प्रणाम। जबसे आपका घर छोड़ा है तबसे मुझे चैन नहीं। पगलीने मुझे अपनी सरलता तथा प्रेमके वश कर लिया है, अतः उसके बिना मेरा जीवन उच्छृङ्खल हो जायगा। मैं चाहता हूं कि आप पगलीका विवाह मेरे ही साथ कर दें। यदि आपको यह स्वीकार हो तो एक दिन अवकाश मिलनेपर दर्शन दें। और बातें मिलनेपर ही कहूंगा। पत्रोत्तर शीघ्र दीजियेगा।

हिन्दू-यूनिवर्सिटी
फ़र्स्ट होस्टल, नगवा, बनारस

आपका —
शम्भुदयाल

पत्र लिखकर शम्भुदयालने कई बार पढ़ा। उसके बाद वह उसे पोस्ट-बक्समें डाल आया।

(६)

दोपहरके समय रामअधार पाण्डेय स्टेशनमें बैठे थे। तारकी डेमी अपने 'गट्ट गट्ट गर गट्ट' शब्दसे अनवरत मुखरित हो रही थी। चारों ओर सुनसान था। वे हिन्दीका एक जासूसी उपन्यास पढ़ रहे थे। उपन्यास पढ़ तो रहे थे, पर उनका ध्यान उस ओर न था। वे किसी दूसरी ही चिन्तामें मग्न थे। किसी दूसरे ही ख़यालमें ग़र्क थे।

पाण्डेयजी उपन्यासके पन्ने उलटते गये। कई अध्याय पढ़ चुके। इसी समय पोस्टमैनने एक लिफ़ाफ़ा उन्हें दिया।

लिफ़ाफ़ेपर लिखा था 'फ्राम, शम्भुदयाल'। पाण्डेयजीका चेहरा खिल उठा। "तो अभीतक वह हमलोगोंको भूला नहीं है। कैसा सुशील और सज्जन बालक है। कहीं उसीके साथ पगलीका विवाह हो जाता तो ज़िन्दगी सफल हो जाती।" लिफ़ाफ़ा खोलते हुए ये शब्द पाण्डेयजीके मुंहसे निकले।

पत्र पढ़कर पाण्डेयजीके आश्चर्य्यका ठिकाना न रहा। जिस बातकी कल्पना करते भी उन्हें सङ्कोच होता था, वही क्या सत्य होनेवाली है? उन्हें अपनी आंखोंपर अविश्वास होने लगा। उन्हें अपनी चेतनापर सन्देह होने लगा। पत्रको बार-बार पढ़कर भी पाण्डेयजी पत्रकी बातोंपर विश्वास न कर सके। विस्मय-विस्फारित नेत्रोंसे वे बार-बार उसकी ओर ताकने लगे।

थोड़ी देर बाद पाण्डेयजीका मोह दूर हुआ। मारे ख़ुशीके वे फूले न समाये। उनकी आंखोंसे हर्षके दो बूंद आंसू टपक पड़े।

अब पाण्डेयजी फ़ुर्सत पानेका उपाय सोचने लगे। रेलवेकी नौकरीमें रविवारको भी छुट्टी नहीं। किस भांति शम्भुदयालसे भेंट करें। पाण्डेयजी शम्भुसे मिलनेके लिये व्यग्र हो उठे।

पाण्डेयजी ख़ुशीके मारे दो दिनतक कोई काम न कर सके। दिन-रात केवल फ़ुर्सत पानेका तरीक़ा सोचा करते। भाग्यवश तीसरे दिन पाण्डेयजीकी चचेरी मौसीका बेटा कार्यवश वहां आया। पाण्डेयजीने इसे ईश्वरप्रदत्त मौक़ा समझा। स्टेशनका सब काम अपनी मौसीके बेटे व्रजकिशोरको समझाकर वे एक दिन सन्ध्याकी गाड़ीसे काशीके लिये रवाना हो गये।

(७)

सब ठीक हो गया। विवाह एक शुभमुहूर्त्तमें निश्चित हो गया। पाण्डेयजीके सिरसे मानों एक भारी बोझ उतर गया।

धीरे-धीरे विवाहका दिन समीप आ गया। दोनों ओर सब तैयारियां होने लगीं। ग़रीबकी बेटीका व्याह था, इसमें तैयारी ही कौनसी ? पर फिर भी पाण्डेयजीने अपनी प्यारकी प्रतिमा पगली-के विवाहमें अपनी सब साध मिटा लेनेकी इच्छा की थी। भरसक वे भी बारातवालोंकी ख़ातिरदारीका पूरा प्रबन्ध करने लगे।

एक दिन शुभमुहूर्त्तमें विवाह हो गया। दोनों विवाहके पवित्र बन्धनमें जीवन-भरके लिये बंध गये।

व्याहमें ही पगली पतिके घर भेज दी गयी।

(८)

मनचाही चीज़ अनायास ही मिल गयी। शम्भुदयालने हाथों-हाथ स्वर्ग पा लिया। वह पगलीसे मिलनेके लिये छटपटाने लगा।

सन्ध्या हुई। धीरे-धीरे रात भी हो आयी। शम्भुदयालके मनमें गुदगुदी पैदा होने लगा। वह सोचने लगा—"आज मैं पगलीको चौंका दूंगा। मुझे देखकर उसे कितना आश्चर्य होगा। मालूम नहीं आज मुझे इस रूपमें देखकर मन-ही-मन वह क्या सोचेगी।" यही सब सोचता हुआ शम्भुदयाल पगलीके कमरेकी ओर चला।

पगली अपने कमरेमें बैठी हुई थी। उसके केश चारों ओर

छिटके हुए थे। पिताके घरमें वह जिस भांति रहती थी, यहां भी उसी प्रकार थी। उसमें आज भी कुछ फ़र्क न था।

पलंगपर बैठी हुई पगली एक तस्वीर देख रही थी। उसे शम्भुदयालके कमरेमें घुसनेका भान भी न हुआ।

शम्भुदयाल पगलीके पीछे जाकर खड़ा हो गया। वह जो चित्र देख रही थी वह शम्भुदयालका ही था। इसी चित्रको एक बार और आमबाग़में देखते हुए उसे शम्भुदयालने देखा था। आज भी वह वही चित्र देख रही थी।

शम्भुदयालने एकाएक प्रकट होकर कहा—"तस्वीर चोरीकी है।"

पगली चौंक उठी। उसे स्वप्नमें भी न मालूम था कि जिनके साथ मेरा व्याह हुआ है वे शम्भुदयाल हैं। आज पति-रूपमें उन्हें ही पा उसके आश्चर्य्यका ठिकाना न रहा। वह मृगशावककी भांति सरलतासे शम्भुदयालको ओर ताकने लगी।

शम्भुदयालने फिर कहा—"पगली, तू चोरी करना भी सीख गयी?"

कुछ झेंपकर पगलीने उत्तर दिया—"यह विद्या तो मैंने आप-ही-से सीखी है!"

शम्भुदयालने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"मुझसे! यह कैसे पगली?"

पगली बोली—"पहले स्वयं चोरी करके आपने मुझे चोरी करनेका मार्ग बताया। और वह चोरी भी साधारण चोरी नहीं, उसका नाम है "हृदयकी चोरी।"

नव जीवन

न जाने कितने दिन देवी-देवता मनाते-मनाते आख़िर किशोरीकी फूटी-सी आंख खुली और उसे पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई। उसने बच्चेका नाम रक्खा सोमेश्वर। उसकी परम आत्मीय सखी इस नामसे बहुत प्रसन्न हुई। बोली—"दीदी, नाम बहुत ठीक रक्खा। रामेश्वर और सोमेश्वरकी ख़ूब जोड़ी मिली। सच कहती हूं, दीदी, रामेश्वर हुआ मेरे पेटसे है, पर मां तुम्हींको मानता है।

किशोरीने रामेश्वरको जानकीकी गोदसे खींचकर अपनी गोदमें ले लिया और बार-बार उसका चुम्बन लेने लगी। रामेश्वर भी अपनेको किशोरीके बाहुपाशसे मुक्त कर, उसके कन्धेपर चढ़कर उसे सन्तान-सुखका अनुभव कराने लगा।

किशोरी और जानकी एक परिवारकी नहीं हैं। एक मकानमें भी नहीं रहतीं। पर उन दोनोंके घर बिलकुल पास-पास हैं। गृहस्थीके काम-काजसे जहां किसीको फ़ुर्सत मिली कि तुरन्त अपनी सखीके घर पहुंची और गपशप करने लग गयी। वे जहांतक बनता रोज़ थोड़ी-बहुत देर एकसाथ बैठकर अपने सुख-

दुःखकी चर्चा किया करतीं। परन्तु लोगोंका न जाने कैसा स्वभाव है कि वे एक घरसे दूसरे घरमें स्त्रियोंका आना-जाना, उनका अन्तरङ्ग प्रेम-व्यवहार नहीं देख सकते, और उन्हें भरसक रोकनेकी चेष्टा करते हैं। यदि स्त्रियां उनके इस बड़बड़ानेको सुना-अनसुना करने लग जायं तो नाना प्रकारके व्यंग्योंद्वारा उनका मज़ाक उड़ानेमें भी वे नहीं चूकते।

एक दिन जानकी, किशोरीकी किसी बातपर, मज़ाकमें, कुछ झुंझला-सी रही थी कि इतनेमें उसकी ननद गोमती वहां कहींसे आ गयी और भौंहें सिकोड़कर बोली—"यह सब क्या हो रहा है? सच है,जहां हंसना वहां रोना। और किशोरी-दीदी, तुम्हारी भी अक़्ल कहां चरने चली गयी है? तमाम घर-गृहस्थीका काम-काज फैला पड़ा रहता है, पर सुबह-शाम, जब देखो तब, तुम हमारी बहूको लिये बैठी गप्पें लड़ाया करती हो! क्या यह सब अच्छा है? तुम्हें हंसी-दिल्लगी शोभा देती है। तुम्हारे घरमें तो काम करनेवाली पांच जनीं हैं—दिन-भर कुछ काम धन्ध न करो, तो कुछ बिगड़ता नहीं; पर बहूके तो कोई लौंडी-बांदी है नहीं। इसकी तुम्हारे साथ गपबाज़ीमें गुज़र नहीं।

जानकीकी हंसी जहां-की-तहां रुक गयी। वह नत-मस्तक होकर ख़ामोश हो गयी। उसके लिये यह कोई नयी बात न थी, उसका तो जीवन ही हाय-विलुका था। सुनकर उसको मार्मिक व्यथा ज़रूर होती। पर बेचारीको तुरन्त ही यह सब भूल भी जाना पड़ता। किशोरी भी ऐसी बात सुननेमें अभ्यस्त हो

गयी थी; क्योंकि अगर वह तेहा करे तो जानकीके साथ मिलना-जुलना ही बन्द हो जाय।

अपनी ननद गोमतीके वहांसे चली जानेपर जानकी विरक्त भावसे बोली—"सुनीं, दीदी, यह सब बातें! यह सब सुनकर देह जल जाती है या नहीं? यह बातें हृदयमें शूलकी भांति चुभती हैं। पर क्या करूं? एक बात भी अगर मुंहसे निकल आय तो खून बह जाय। हाय, किस प्रकार मेरी ज़िन्दगी कटे।" कुछ देर रुककर फिर बोली—"तुम यहांका सब हाल जानती हो, दीदी, तुम्हारे पैर पड़ती हूं, कुछ मनमें बुरा न मानना।"

किशोरीने हंसते हुए कहा—"तुम जब-तब यह सब क्या कह बैठती हो? यदि फिर कभी यह बात मुंहसे निकालोगी तो हमारी-तुम्हारी न बनेगी। यह बात तुमसे मैं पचासों बार कह चुकी, पर तुम्हारे मने ही नहीं आती।"

इतने-ही-में रामेश्वर इधर-उधर घूम-फिरकर वहां आ पहुंचा और अपनी मांको पुकारकर उसकी गोदकी ओर झपटा, पर तुरन्त ही उधरसे मुड़कर किशोरीकी गोदमें कूदकर बैठ गया और बोला—"आम्—मा!"

जबसे रामेश्वर बोलना सीखा तबसे किशोरीको इसी नामसे पुकारा करता। किशोरीने साड़ीसे एक बांह खोल, उसके भीतर रामेश्वरका हाथ चांप, होंठ सिकोड़कर, चुम्बन लेते-लेते जानकीके आनन्दोत्फुल्ल मुख-कमलकी ओर एक बार दृष्टिपात किया।

इसी समय ननद न जाने कहांसे वहां चू पड़ी और हाथ झटकाकर बोली—"बच्चेको जिस-तिसकी गोदमें जो तुम डाल देती हो, इसका नतीजा तुम्हें मिले बिना न रहेगा, बहू। मेरी इस बातको गांठ बांध लेना। तुम्हारी इन्हीं बातोंसे तो मुंहसे बातें-कुबातें निकलती हैं।"

(२)

इसी प्रकार चार वर्ष कट गये। रामेश्वर और सोमेश्वर दोनों भाई एकसाथ ही खेलते, महीनेके आधे दिन एकसाथ खाते, एक-ही-साथ किशोरीकी चारपाईपर इधर-उधर जब दोनों सोते तभी उन्हें रातको नींद आती। कौन किशोरीके अधिक निकट शयन करे, इसी विषयको लेकर प्रायः दोनोंमें कलह हुआ करता। किशोरी कभी रामेश्वरको बग़लमें चिमटा लेती और सोमेश्वरको मीठी-मीठी बातें कहकर सन्तुष्ट रखती, और कभी सोमेश्वरको चांप लेती और रामेश्वरको मधुर वचनोंमें भरमाये रहती। फिर भी यदि वे आपसमें झगड़ते तो दोनोंको आस-पास लिटाकर बीचमें स्वयं लेटती। इस गड़बड़के कारण जानकीको अपनी ननदसे तमाम उलटी-सीधी सुननेको मिलतीं; पर वह एकदम गूंगी बन जाती। एक बातका भी उत्तर न देती—केवल क्रोधके मारे मुंह फुला लिया करती। परन्तु एक दिन जब अधिक सहन न कर सकी तो बोली—"मरे वह छोकरा, यहां उसे न जाने कौन खाये लेता है। यहां घड़ी-भर नहीं रहता। और ज़बर्दस्ती लानेपर सारा बदन नोच-काटकर लहू-लुहान कर

देता है। नहीं तो उसे वहां क्यों रहने देती? पर अब उसे भी मारूंगी और मैं भी मरूंगी। जाती हूं और पकड़े लिये आती हूं।" यह कहती हुई जानकी किशोरीके घर पहुंची और रामेश्वरकी बांह पकड़कर उसे ज़मीनपर घसीटती हुई घर ले चली।

किशोरी आश्चर्यान्वित होकर बोली—"अरे, हैं-हैं! यह क्या करती हो?—अरे सुनो—सुनो—तुम्हें क्या हो गया है?"

जानकीने रुंधे गलेसे कहा—"हो क्या गया है, रात-दिनकी रिल्ल-चिल्ल अब नहीं सही जाती। आजसे उसका यहां आना एकदम बन्द किये देती हूं। चाहे रो-रोकर आंखें फोड़ डाले, पर अब कभी यहां नहीं आने दूंगी।"

रामेश्वरने अपने रुदन-चीत्कारसे तमाम घर कंपा दिया, और हाथ-पैर उछालता, दांतसे मांका बदन काटता, नोचता, उसके हाथोंसे छूट भागनेकी चेष्टा करने लगा; पर सफल न हो सका। जानकी उसे घसीटती-घसीटती घर ले आयी।

किशोरी और अधिक तो कुछ कर न सकी, वहीं बैठी-बैठी बक-झक करती रही। रामेश्वरका रोना-चिल्लाना उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उसका एक-एक शब्द, किशोरीके कानमें पड़, शूलकी भांति छिदता। उसकी इच्छा होती, चलूं और उसे छुड़ाकर, अपनी गोदमें ले, इस घर ले आऊं। इतनेमें ही बड़े ज़ोरके चपेटाघातकी आवाज़ उसके कानोंमें पड़ी। अब वह अधिक स्थिर न रह सकी और तुरन्त ही जानकीके घर पहुंची।

देखा, रामेश्वर ज़मीनमें पड़ा गाली-गुफ़्ता कर रहा है, और जानकी उसे घुटनेसे दबाये चटाचट मारने जुटी है। किशोरीने जानकीको खींचकर अलग हटाया और धूल-धूसरित बालकको गोदीमें ले, छातीसे लगा, बार-बार पुचकारकर चुप करने लगी। रामेश्वर दोनों हाथोंसे उसके गलेको लपेटकर, उसके कन्धेमें अपना मुंह छिपा, सिसकियां भरने लगा।

"और मार पाती तो सारी आफ़त ही कट जाती, मरता भी नहीं। इसके कारण मेरे हाड़ पक गये।" कहते-कहते जानकी ख़ुद भी रोने लग गयी।

आंखें निकालकर किशोरी बोली—"तुम्हारी बुद्धि कैसी मारी गयी है? यह ख़ूनकी बूंद, दुधमुंहा बालक, जिसपर इतनी निष्ठुरता! मुझे ऐसी रिस लगती है कि तुम्हारे गाल दोंच दूं। अगर मुझे मालूम होता कि तुम यह काण्ड करोगी तो उसे यहां किसी तरह न आने देती।—हां, हां, हमारा बछड़ा, छौना, बेटा।"

इसी प्रकार बच्चेको चुप करती हुई, किशोरी घरसे बाहर निकल आयी।

इस घटनाके दो महीने बाद सोमेश्वर २१ दिन विषम रोग-ग्रस्त रहनेके बाद येन-केन-प्रकारेण कालके मुखमें जानेसे बच गया, तो किशोरी जानकीके हास्योज्वल मुखचन्द्रकी ओर निहारकर, प्रसन्नवदन हो, बोली—"बहन, तुमने हमारा सोमेश्वर बचा लिया। इतनी सेवा! इतनी टहल!!"

बीच-ही-में बात काटकर जानकी बोली—"दीदी, बस, तुम्हारी यही बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। जब देखो तब यही कथा। मैंने उसकी क्या सेवा-टहल की? सच कहती हूं, अब फिर कभी यह सब झूठी बातें कहोगी, दीदी, तो मैं तुम्हारे पास आना-जाना बन्द कर दूंगी।"

किशोरीने हंसकर कहा—"ठहरो, ठहरो, इतनी बहादुरी न दिखलाओ,—सचमुच, मैं तो, मां होनेपर भी, वह सब न कर पाती, जो तुमने किया।"

"तुम तंग करना न छोड़ोगी, दीदी, तो, लो, मैं यह चली।" यह कहती हुई जानकी चली गयी, किन्तु तुरन्त ही रामेश्वरको गोदमें लिये फिर लौट आयी और कहने लगी—"देखो, दीदी, तुम्हारा रामेश्वर आधा रह गया, बेचारा १५ दिनतक तुम्हारे पास नहीं आने पाया। उसके इस कठोर दण्डको और कोई अनुभव न करे, पर मैं तो करूंगी ?"

किशोरीका हृदय, रामेश्वरका अस्थि-पञ्जर देखकर, व्यथासे दुःखित होने लगा। उसने धीरे-धीरे आगे बढ़कर जानकीकी गोदसे रामेश्वरको अपनी गोदमें ले लिया। बच्चेके मुद्दतसे मुरझाये हुए होंठ पूर्ववत् पुनः खिल उठे।

(३)

उसके बाद लगभग दो मास समय व्यतीत हुआ होगा। सन्ध्या-समय किशोरी, सोमेश्वरको एक कटोरी दूध पिला, सुलाकर, दबे-पांव जानकीके घर आयी, तो जानकी उसे, चोरकी

भांति इधर-उधर ताकते हुए घूमते देखकर, पहचाननेकी चेष्टा करने लगी, और पहचानकर भयभीत स्वरमें ज़ोरसे बोली—"दीदी!"

किशोरीने सहसा चौंककर अपना मुख फेर लिया। आज सात दिनसे उसने यह स्वर नहीं सुना था। यह सुन पायेगी ऐसी उसे आशा भी न थी। इन सात दिनोंमें वह रामेश्वरको भी एक भी बार प्यार नहीं कर सकी थी। जो किशोरी अपने पुत्रके कठिन रोग-कालमें भी, उसे वहीं छोड़कर, दिनमें दो-दो, तीन-तीन बार रामेश्वरको देखने और उसे प्यार करनेके लिये आया करती थी, वह भला उसे एकदम कैसे बिसार सकती है? उसके नेत्रोंसे झर-झर अश्रु-विन्दु टपकने लगे!

जानकीने भी अपने लोल-कपोलोंपरसे अश्रु-प्रपातको पोंछते-पोंछते कहा—"यहां कोई देख लेगा, दीदी, ठहरो, मैं आती हूं।"

किशोरी अविरुद्ध कण्ठसे बोली—"आओ, भाई, तुम यदि एक बार रामेश्वरको लेती आती,—न-न, नहीं लायी, अच्छा हुआ।"

जानकीने इधर-उधर एक बार और निहारकर कहा—"तुम कुछ कहती नहीं, दीदी, सिर्फ़ तुम्हारे कहनेसे ही मुक़द्दमा बन्द हो जाय।"

किशोरी बोली—"अरे, बहन, सब कुछ कहती हूं, ख़ूब क्रोध दिखलाती हूं; पर मेरी बात कोई सुने, तब तो। किन्तु, सुनती हूं, दोष देवरका ही है।"

जानकी एकाएक तीव्र स्वरसे बोल उठी—"तभी तो तुमसे कहनेके लिये कहती हूं, दीदी।" यह कह, एक बार खांसकर, फिर कहा—"दोष किसीका नहीं, दोष हमारी नासमझीका है। ख़ैर, अब कभी यहां नहीं आऊंगी, समझ लूंगी, किशोरी-दीदी नामकी मेरी कोई बहन नहीं, सोमेश्वर नामका—"

इतना कह, बातचीत बन्द कर, जानकी द्रुतगतिसे घर छोड़कर चली गयी।

मामूली-सी बात थी। एक बीघा ज़मीनके अधिकारको लेकर रामेश्वरके पिता और सोमेश्वरके पिताके बीच आपसमें कुछ मनमुटाव हो गया। किन्तु, कुछ दिन बाद, दोनोंने अपनी बहु-कालीन आत्मीयताका स्मरण कर परस्पर समझौता करना चाहा। दोनोंने अपने-अपने पञ्च निश्चित किये। समझौता होनेकी आशा भी पूरी थी। पर चुग़लख़ोरोंने बीच-ही-में दोनोंको उकसा दिया। दोनोंने अदालतोंके विनाशकारी मार्गका अवलम्बन किया। दोनों घरोंकी जमा-पूंजी स्वाहा होनेके बाद फ़ैसला हुआ। फ़ैसलेमें मजिस्ट्रेटने वह ज़मीन रामेश्वरके पिताको दिलायी। तभीसे दोनों पक्षोंकी शत्रुता चिरस्थायी हो गयी।

मामलेका सूत्रपात होनेपर किशोरी एवं जानकीके ऊपर भी सख़्त आर्डर जारी हो गया कि दोनोंका एक दूसरेके यहां आवागमन एकदम बन्द हो जाना चाहिये। एक मकानका बालक दूसरे मकानमें न जाने पावे। यह कठोर आदेश पाकर जानकी, अपना हार्दिक खेद प्रदर्शित करनेके लिये, निषेधाज्ञाका उल्लङ्घन करके भी,

छुपकेसे, किशोरीके घर गयी तो वापस आनेपर उसे नाना प्रकारकी लाञ्छना सहनी पड़ी। इसके बाद भी, दोनोंको आशा थी कि इस विवादका शीघ्र ही अन्त हो जायगा, पर उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई।

(४)

इस प्रकार दोनों सखियोंने, परस्पर इतना सान्निध्य रहनेपर भी, एक-दूसरेको बिना देखे दो वर्ष व्यतीत कर दिये। समय सब कुछ सहा लेता है, यह सत्य है, पर व्यथा भुलायी नहीं जा सकती। सब काम-काज करते रहनेपर भी व्यथा दोनोंके हृदयोंको बराबर जलाया करती।

जानकी जब रामेश्वरको कोई नयी चीज़ खानेको देती तो उसका हृदय सोमेश्वरके लिये तड़प उठता, और इसी प्रकार किशोरी जब सोमेश्वरको कोई नवीन वस्तु देती तो उसका भी हृदय रामेश्वरके लिये आन्दोलित होने लगता। दोनों सखियां अपनी बेबसीपर चिन्ता करते-करते किसी-किसी दिन आंसू बहा उठतीं। जब कभी व्यथा अधिक बढ़ जाती तो एक कोनेमें बैठकर चुपचाप रो लिया करती थीं। इन दोनों परिवारों-में-से कोई भी व्यक्ति इनकी मर्मवेदनाकी खोज-खबर लेनेवाला न था। इनके प्रति सहानुभूति दिखलाना तो दूर रहा, परिवारके लोग अपने कटु वचनोंद्वारा इनके घावोंपर नमकके छिड़कावका काम और करते, और इसीमें आनन्द पाते थे।

उस बार चैत्रके प्रारम्भसे उस गांवमें शीतलाका भीषण प्रकोप हुआ। सब घरोंमें आतङ्क छा गया। सर्वापेक्षा बालकोंपर ही

आक्रमण विशेषरूपसे हुआ। ग्रामवासियोंने अपने-अपने बच्चोंको नाना प्रकारकी स्वास्थ्यप्रद ओषधियोंका सेवन कराया और माता-शीतलाके नामसे नाना प्रकारकी पूजा-मानता की। अपनी-अपनी सन्तानोंको व्याधिग्रस्त होनेसे बचानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की। किन्तु, निर्मम मृत्युने उन लोगोंका वह सब प्रयत्न व्यर्थ कर दिया और एक-एक शिशुको अपनी शान्तिमय गोदमें लेने लगी। सन्तानविहीन माताओंका हाहाकार ही शङ्कित जननियोंका हृदय विदीर्ण करने लगा।

इसी समय एक दिन रामेश्वर भी वसन्त-रोगसे पीड़ित होकर शय्याशायी हो गया। जानकी मन-ही-मन विपदा सहन कर रही थी। सात दिनतक रामेश्वर प्रायः अचेतन्यावस्थामें ही पड़ा रहा। जब कभी, थोड़ी देरके लिये, उसे चेतन्य-लाभ हो आता तो हाथ-पैर फटकारकर, ठिनक-ठिनककर, इस तरह नज़र दौड़ाता, मानों किसीको ढूंढ़ रहा हो; परन्तु तुरन्त ही उसकी आंखें फिर मुंद जातीं। सन्तप्तहृदया जानकी रोगग्रस्त पुत्रके सिरहाने बैठी, उसके मस्तकपर अपना हाथ फेरते-फेरते, माता शीतलासे प्रार्थना करती—“माता, मैं षोड़शोपचार-सहित तुम्हारी पूजा करूंगी।”

किशोरी रोज़ दरवाज़े तक जाती, उसकी इच्छा होती कि चुपचाप जाकर एक बार रामेश्वरके सिरपर हाथ फेर आऊं, उसे गोदमें लेकर सान्त्वना दे आऊं; पर तुरन्त ही उसके दिलमें, सोमेश्वरका ध्यान करके, आशङ्का उत्पन्न होती कि

कहीं उसके पुत्रको भी यह दारुण रोग न दबा बैठे। यह रोग कितना संक्रामक, कितना व्यापक है, विशेषकर बाल-बच्चोंके लिये, यह भी किशोरीसे छिपा नहीं था। वह यथासाध्य सावधान रहती थी। सोमेश्वरको वह एक क्षणके लिये भी अलग न रखती। हरवक्त गोदमें लिये रहती। दो बालकोंके लिये वह मन-ही-मन नित्य ईश्वरसे प्रार्थना किया करती।

किसी तरहसे और तीन दिन व्यतीत हो गये। रामेश्वरके रोगका कोई उपचार नहीं सूझ पड़ा। परिवारके सभी लोगोंको यह आशङ्का होती कि इस विपदासे मुक्ति पानेकी कोई आशा नहीं है। इसी अवस्थामें प्रशान्त रात्रिके समय जानकी, रामेश्वरके वसन्त-जर्जरित गातपर हाथ रक्खे, नेत्र बन्द किये, कातरस्वरसे माता शीतलाका नाम स्मरण कर रही है। रजनी प्रायः शेष होने आयी, आकाशमण्डलकी श्यामतामें शनैः-शनैः उज्वलता आने लगी। इसी समय उसे स्पष्ट सुन पड़ा, मानों कोई उससे कह रहा है, 'यदि सोमेश्वर आकर तेरे पुत्रकी देहपर एकबार हाथ फेर दे तो तेरा बालक उठ बैठे।' वह भयभीत होकर कांपने लगी, और चारों ओर नज़र दौड़ायी, पर कोई नहीं नज़र पड़ा। 'हे मां' कहकर उसने आखें मूंद लीं। पर बार-बार उसे वही शब्द सुनाई पड़ते। 'मां, हे, मां,' कह कहकर वह चीख़ने लगी।

उसका पति पास-ही-के कमरेमें सोया हुआ था, वह पागलकी भांति, चारपाई छोड़कर दौड़ा आया और घबड़ाते हुए बोला—हैं-हैं,—हाय, क्या हमारा रामेश्वर चला गया?"

जानकी घबड़ाकर कह उठी, "रक्षा करो! रक्षा करो!! माता, हमारे छौनेकी रक्षा करो!!! तभी—" इतना कहकर चीत्कार-कर ज़मीनमें गिर पड़ी।

पतिने उसके चेहरेकी ओर दृष्टिपात करके कहा, "यह क्या करती हो? जब उसे तुमने माताके भरोसे छोड़ दिया है तब ऐसा क्यों?" जानकी उसी प्रकार चीख़ती रही, पर कोई उत्तर न देता था।

उसके पतिने रामेश्वरकी देहपर हाथ रखकर देखा, फिर कुछ आश्वस्त होकर पत्नीको सान्त्वना देनेके लिये पूछा—"चीख़ती क्यों हो, क्या हुआ है, बताओ?"

बात कहते हुए जानकीका हृदय विदीर्ण हो रहा था। उसने किसी प्रकार अपनेको संभाला और टूटे-फूटे शब्दोंमें सब मामला पतिको जतलाया।

उसका पति क्षुब्ध होकर डांटता रहा। कुछ देर बाद वह बोली—"तुम यहां आओ।" पास जानेपर पतिसे कहा—"सुनो, अकेला वही ज़मीनका टुकड़ा नहीं, बल्कि अपनी भी सब ज़मीन उन्हें दान कर दो, यदि वह एक बार सोमेश्वरको यहां ले आयें।"

उन्मादिनीकी भांति, पतिके मुखकी ओर देखकर, जानकी फिर बोल उठी—"हाय, मां, मेरा सिर काटनेपर भी, मैं यह बात मुंहसे न निकाल सकूंगी, कैसे कहूंगी कि सोमेश्वरको यहां छोड़ जाओ।—न-न, माता! मैं न कह सकूंगी, माता—" यह कहकर वह चारपाईपर लेट गयी।"

जानकीको माता-शीतलाका क्या आदेश हुआ है, इसकी

ख़बर चारों ओर फैल गयी। किशोरीके कानोंमें ज्योंही यह संवाद पहुंचा, उसका समस्त शरीर थर-थर कांपने लगा। वह पत्थरकी मूर्त्तिकी भांति हो गयी। सोमेश्वर इस समय आंगनमें खेल रहा था, जानकीने उसे उठाकर झट छातीसे चिपटा लिया। उस दिन तो उसने एक मिनिटके लिये भी सोमेश्वरको गोदसे नहीं उतारा। सोमेश्वर खेलनेके लिये गोदसे पृथक् होनेकी बराबर चेष्टा करता रहा, पर वह उसे ज़बर्दस्ती गोदमें लिये रही। किसी तरह उसे अलग नहीं होने दिया। खुद तमाम दिन निराहार रही, यहांतक कि जलकी एक बूंद भी गलेमें नहीं डाली। इसी प्रकार उदास, सजलनयन रहकर किसी प्रकार दिन कट गया। सन्ध्या हुई। उसने पूरी खोज-ख़बर ली तो पता लगा कि रामेश्वरकी दशा क्षण-क्षण शोचनीय होती जा रही है। इस संवादसे उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उसके एक-एक शब्दकी जगहपर किसीने उसके वक्षस्थलपर खूब ज़ोरसे हथौड़े मारे हों।

अर्द्धनिशाका समय है और सारे गांवमें निस्तब्धताका राज्य है, हां, बीच-बीचमें, जब कभी, किसी पशु-पक्षीका शब्द कानमें पड़ जाता है, इसके सिवा चारों ओर सन्नाटा है। इसी समय किशोरी उठी और स्वामीको जगाया। पतिने उसके मुखकी ओर दृष्टिपात किया और बोला—"क्या हुआ?"

कम्पित स्वरसे किशोरीने कहा—"शीतलाग्रस्त रोगीके स्पर्श-मात्रसे ही क्या शीतलाका आक्रमण हो जाता है?"

उसका यह प्रश्न सुनकर उसके पतिने एक बार उसके चेहरे-की ओर फिर निहारा और मौन धारण कर लिया।

यह देख, और भी उत्तेजित हो किशोरी बोली—"चुप क्यों हो रहे, बोलो, क्या छूने-ही-से रोग हो जाता है ?"

उसका पति बोला—"छूने-ही-से यह रोग हो जाता है या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।"

किशोरी भी यही सुनना चाहती थी, उसने मनमें कहा—"यही तो मैं कहूं, माता दिन-रात बालकको गोदमें लिये रहती हैं, तब तो कुछ होता नहीं; यह सब कहनेकी बातें हैं कि छूनेसे ही आक्रमण हो जाता है।" इतनेमें पतिने कहा—"तुम सोओ, रातको जागते रहनेसे तबीयत ख़राब हो जाती है।"

यह सुनकर किशोरी सोमेश्वरको ख़ूब ज़ोरसे छातीसे चिपकाकर सो रही।

परन्तु कुछ ही देर बाद फिर उठ बैठी और दोनों हाथ जोड़, माता-शीतलाको बारम्बार प्रणाम कर, कहने लगी—"मां, तुम अपना आदेश वापस ले लो, मुझे न सुनाओ, तुम हमारे रामेश्वरकी रक्षा करो ! मैं जाकर उसकी सेवा-टहल करूंगी। तुम यदि उसके घावोंका रक्त चूसनेके लिये कहो, तो वह भी करूंगी, मां !" धीरे-धीरे इसी प्रकार प्रभातकाल हो गया। अपने पुत्रका शरीर स्पर्श करके वह घरसे बाहर निकली।

देवीप्रसादको सामने देखकर उसने पूछा—"उस घरकी ख़बर कुछ मिली ? रामेश्वर कैसा है ?"

देवीप्रसाद बोले—"प्रतापनारायणसे भेंट हुई थी तो वे बोले कि उसकी हालत बहुत ख़राब है, रात तो किसी तरह कट गयी, पर अब घड़ी कटना मुश्किल है।"

"ऐं-ऐं" कहते-कहते किशोरी धरतीपर बैठ गयी।

(५)

जानकीके पतिने व्यग्र होकर उससे कहा—"अब भी जाओ और उनसे हाथ जोड़कर कहो कि ज़रा दो डग रखकर यहां चली आयं और हमारे रामेश्वरको बचा लें। जाओ, वे तुम्हारी बात नहीं टालेंगी।"

जानकी मूर्तिवत् खड़ी हो, नेत्र-विस्फारित दृष्टिसे पतिके मुखकी ओर देखती रही।

उसका पति पागलकी भांति घरसे बाहर निकल आया और जानकी पुत्रके मुखकी ओर टकटकी लगाये पूर्ववत् चुप-चाप बैठी रही।

उसी समय किशोरी, सोमेश्वरको गोदमें लिये, धीरे-धीरे रोगीके कमरेमें आकर खड़ी हो गयी। उसके आनेपर ऐसा मालूम हुआ, मानों सारा कमरा उजालेसे जगमगाने लगा।

किशोरी शान्तभावसे बोली—"जानकी-बहन, देखो, तुम्हारे सोमेश्वरको ले आयी।"

जानकीकी सारी देह थर-थर कांपने लगी। उसने वह कण्ठस्वर सुनकर मुख फेर लिया।

पहले तो जानकीको अपने कानोंपर विश्वास नहीं हुआ, पर फिर उधर देखकर किशोरीके पैरोंपर गिर पड़ी।

\+ + ×

बस, तभीसे रामेश्वरके चेहरेपर रौनक़ आने लगी, और धीरे-धीरे, दस रोज़में वह एकदम चङ्गा हो गया और उसे नयी ज़िन्दगी मिली।*

---

*बंगला "गल्प-लहरी" से।
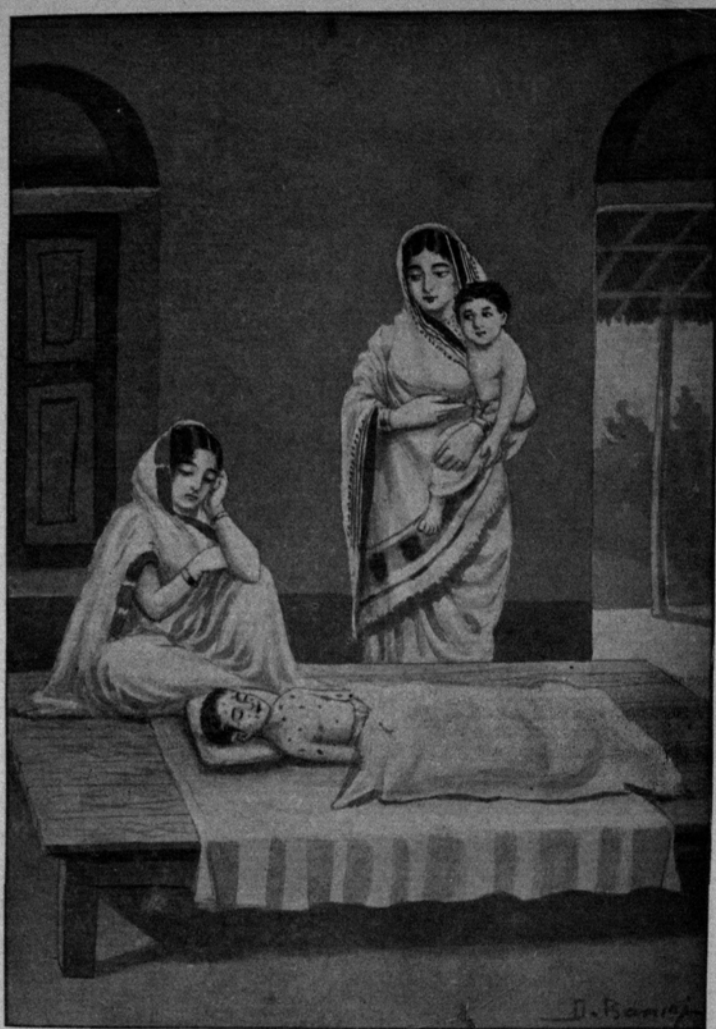
जानकी पुत्रके मुखकी ओर टकटकी लगाये पूर्ववत् चुपचाप बैठी रही। किशोरी सोमेश्वरको गोदमें लिये धीरे धीरे रोगीके कमरेमें आकर खड़ी हो गयी।

[पृ० ३६]

एक पागल

रामेश्वरने मोहनलालके पास आकर कहा—"मोहन, यह मेरे बहनोईका पत्र आया है। वह तो मुझे यहांसे लेने आ रहे हैं, आज नहीं तो परसों वे वहांसे चल देंगे। अब क्या करना चाहिये ?"

रामेश्वरकी बात सुनते ही मोहन अधीर हो उठा, उसके मुंहसे नैराश्य भावके साथ निकल पड़ा—"तो फिर आने दीजिये, जब वे नहीं मानते तो फिर क्या उपाय है !"

मोहनलालकी बात सुनकर रामेश्वर तुरन्त अपने क्लासमें चले गये। मोहन अपने आफ़िस रूममें जाकर बैठा और कुछ काम करना चाहा, परन्तु उसका जी न लगा, वह प्रयत्न करने-पर भी कुछ न कर सका। अन्तमें उठकर घर चला आया। घर आते ही उसकी उदासी और भी बढ़ गयी।

किशोरीने मोहनको देखा, उसका मुंह फूला हुआ था, नाक लंबी हो रही थी, परन्तु इच्छा होनेपर भी किशोरीने कुछ कहनेका साहस न किया।

मोहन कलके नीचे नहानेके लिये बैठा, इधर-उधर निकलते हुए किशोरी बार-बार मोहनकी आंखोंमें पड़ने लगी। वह अपने हृदयके भावको पलटनेका प्रयत्न करता ; किन्तु रह-रहकर वह सोचने लगता—"रामेश्वर चले जायंगे—किशोरी भी चली जायगी, मैं यहां रह जाऊंगा ! वह घड़ी आ गयी—वह दिन आ गया !"

उसने चाहा कि मैं किशोरीसे आज आनेवाले पत्रके सम्बन्धमें कह दूं। हृदय कड़ा किया, साहससे काम लिया, किन्तु कहते-कहते रुक गया, कुछ कह न सका।

कुछ देरमें रामेश्वर विद्यालयसे पढ़ाकर आ गये। मोहन अभी कलके नीचे नहा रहा था, इस समय वह अनेक प्रकारकी बातें सोचते हुए इतना अस्त-व्यस्त हो रहा था कि उसे न मालूम हुआ कि "मैं कितनी देरसे नहा रहा हूं। रामेश्वरने आते कहा—"किशोरी, मोहनने आजके पत्रके संबंधमें तुझसे कुछ कहा ? देख, यह पत्र आया है—बहनोईजी आ रहे हैं, वे मुझे अब यहां रहने न देंगे, छुट्टी ले चुके हैं, रेलवे पास मिलनेमें एक-दो दिनकी देरी है, मिलते ही वे यहां आनेके लिए चल पड़ेंगे।"

किशोरीका वक्ष-स्थल ज़ोरसे धड़कने लगा, श्वास ज़ोरोंसे चलने लगी। मुंहसे कोई बात न निकली। मोहन अब भी पंखेके नीचे बैठा हुआ आंख बन्द किये माथेपर पानी छोड़ रहा था। किशोरीने मोहनकी ओर देखा, उसके फूले हुए मुंह और बढ़ी हुई नाकका कारण किशोरीसे छिपा न रह सका।

११

मोहन नहाकर कपड़े पहन रहा था, किशोरी भोजन परोसा। रामेश्वरने मोहनसे खानेके लिए कहा, किशोरीने भी उत्तम नेत्रोंसे उनकी ओर देखते हुए कहा—"महाशयजी,आइये, भोजन कीजिये।"

मोहनने देखा कि किशोरी और रामेश्वर बैठे हुए मेरा रास्ता देख रहे हैं। उसने पास आकर देखा, भोजनोंका बरतन परोसा रक्खा है। एक साथ बैठकर हम तीनों भोजन करेंगे। यह प्रेम, यह स्नेह! कितने दिनके लिए—कितने समयके लिए? इनके जानेके बाद मैं किसके साथ भोजन करूंगा। किशोरी किसके साथ भोजन करेगी?

जिस समय मोहन यह सब सोचते हुए कपड़े पहन रहा था, उसके नेत्रोंमें आंसू थे। उस समय अचानक किशोरीने मोहनका हाथ पकड़कर खींचा और कहा—"आइये, भोजन कीजिये।"

मोहनने उज्ज्वल आंखोंसे किशोरीके मुख-मण्डलको ओर देखा। दो-पहरकी गर्मीसे उसका लाल-लाल मुख और भी लाल हो रहा था। किशोरीने मोहनकी अधीरताको देखकर मानसिक व्यथाका अनुभव करते हुए कहा—"देखिये, भोजन कीजिये, बड़ी : देर हो रही है। अभीसे आप इतने अधीर क्यों होते हैं।"

तीनोंने एक साथ भोजन करना प्रारम्भ किया।

[२]

किशोरीके यहांसे चले जानेका दिन निकट आने लगा, इसी-लिए उससे मिलनेके लिए कोई आज और कोई कल आने लगा। आज प्रातःकालसे ही किशोरी घरके काम-काजमें लगी हुई है। लखनऊसे उसके बाल्य-कालके प्राइवेट मास्टर मि० हमीद आ रहे हैं। हमीद जातिके मुसलमान हैं, परन्तु उनमें बहुत कुछ हिन्दूपन है। किशोरीसे सदा पत्र-व्यवहार होता रहता है। बहुत दिनोंके पश्चात् उनसे मिलनेका किशोरीको समय मिला है, इसीलिये वह प्रसन्न हैं।

नौ बजेके लगभग हमीद कानपुर ओ० आर० आर० से आ जायंगे। जैसे-तैसे समय कटा, रामेश्वर साइकिल लेकर स्टेशन पहुंचे। हमीद गाड़ीसे उतरकर, प्लेटफार्मके बाहर हो रहे थे। रामेश्वरने दौड़कर हाथ पकड़ा। दोनों एक-दूसरेसे प्रेमसे मिले और रामेश्वर हमीदको लेकर घरको रवाना हो गये।

घरपर आकर हमीद किशोरीसे मिले। हमीद सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित नवयुवक हैं। इसी वर्ष उन्होंने थर्ड-इयरकी परीक्षा दी है। उनके उज्ज्वल वस्त्र, सुन्दर पहनाव उनकी सुन्दरताको और भी बढ़ा रहे थे। किशोरी स्वयं आज अच्छे-अच्छे वस्त्रोंमें सजी हुई थी। बहुत दिनोंके पश्चात्का यह मिलन दोनोंके हृदयोंमें विशेष प्रसन्नता पैदा कर रहा था। किशोरीने बड़े प्रेम और उत्साहके साथ भोजन बनाया और रामेश्वर तथा हमीदको एक साथ बिठाकर भोजन कराया। हमीदने किशोरीके हाथके भोजनोंकी बड़ी प्रशंसा की।

दोपहर ढल रही थी, आज अभीतक मोहन भोजन करने नहीं आया। रामेश्वरने आज प्रातः मोहनको अच्छा-अच्छा भोजन खिलानेके लिए कहा था, परंतु फिर भी उसके अभीतक न आनेके कारण रामेश्वर उसे ढूंढ़ने चले। रास्तेमें आते हुए मोहन और विद्यालयके व्यवस्थापक गुरुजीको देखा तो ठहरकर उन्हें लेकर घरको लौटे। घर आकर मोहन गुरुजीके साथ भोजन करनेके लिए बैठा। गुरुजीके बुलानेपर रामेश्वरने उत्तर दिया, "आज तो मैं भोजन कर चुका हूं।"

भोजन परोसकर सामने आनेपर मोहनने देखा, यह भोजन तो किशोरीके हाथका नहीं है, गुरुजीकी थालीमें देखा तो किशोरीके हाथका बना हुआ भोजन था। यह देखकर मोहनका मन उदास हो गया। वह सोचने लगा, "आज मेरा यह अपमान क्यों? मेरे थालमें किशोरीके बनाये हुए सामानमेंसे कोई चीज़ नहीं, यह क्या बात है?"

मोहनका हृदय दुःख और वेदनासे फटने लगा। वह सोचने लगा—"जो मुझे अपनी बनाई चीज़ें नहीं देना चाहता, जिसको मुझसे इतनी घृणा है, उसके लिए मैं व्यर्थ रंज करता हूं।"

एकाएक रामेश्वरने किशोरीसे कहा—"मोहनको सब्जी नहीं दी?"

किशोरीने धीरेसे, लापरवाहीके साथ उत्तर दिया—"देती हूं।"

किशोरीने सब्जी लेकर मोहनके थालमें रख दी। किन्तु

किशोरीके व्यवहार और उसके उत्तरसे लगातार मोहनका पश्चात्ताप बढ़ने लगा। वह सोचने लगा, आज ऐसा क्यों है—क्या आजसे किशोरी मुझसे अलग हो रही है ? उसकी नज़रोंमें मैं इतना ग़ैर और नाचीज़ हूं, कि………"

जिस समय मोहन अनेक प्रकारकी बातें सोचनेमें अचेत-सा हो रहा था, उसी समय रामेश्वरने पूछा—"मोहन! सब्जी अच्छी है ?"

मोहनने आंखोंमें आंसू भर-कर उत्तर दिया—"मुझे तो अपनी दाल ही रुचिकर जान पड़ती है, मुझे सब्जीकी क्या आवश्यकता ?"

रामेश्वरने फिर पूछा—"क्या अच्छी नहीं लगी ?"

मोहनने स्पष्ट उत्तर दिया—"नहीं।"

मोहनका उत्तर सुनते ही किशोरी जल-भुनकर ख़ाक हो गयी। उसने क्रोधके साथ पंचसे पानी लेते हुए कहा—"यह क्यों अच्छी लगेगी, भावीने बनाया होता तो अच्छी लगती !"

किशोरीका यह उत्तर मोहनके हृदयमें वाण-सा लगा, अपमान-पर-अपमान सहकर उसका हृदय बहुत दुःखित हो गया। क्रोधके आवेशमें मोहनने चाहा कि मैं भोजन छोड़ उठ जाऊं, परन्तु फिर भी अपने आपको सभालकर उसने एक बार किशोरीकी ओर देखा। उसका मुंह क्रोधसे भरा हुआ था, मोहनको अपनी अवस्थापर रंज हुआ। वह सोचने लगा—"मेरे हृदयका प्रेम और मोह मुझे इस प्रकार पददलित बना रहा

है। इस प्रेमको—इस मोहको धिक्कार है! आज किशोरीके ही मुंहसे निर्णय हो गया। उसकी इस बातका कि "यह क्यों अच्छी लगेगी, भाभीने बनाया होता तो अच्छी लगती"—अर्थ मैं समझता हूं। भाभी उसकी है, मेरी तो कोई नहीं है। जिस भाभीने मेरे साथ किसी प्रकारकी कोई बात उठा नहीं रखी, वह भाभी मेरी बनायी जा रही है, तो फिर किशोरी किसकी हो रही है? क्या वास्तवमें किशोरीसे मेरा कोई संबंध नहीं है? वह मुझे जब इस प्रकार समझती आ रही है तो फिर मुझे आजसे इस बंधनको तोड़-देना चाहिये।"

भोजन करके मोहन गुरुजीके साथ बाहर चला गया। उससे कोइ बोला नहीं। वह भी किसीसे कुछ न बोला। विद्यालयमें गया, पर उसका जी न लगा, घबराकर वह वहांसे चलता हुआ। रास्तेमें चलते हुए वह सोचने लगा, "कहां जाऊं, कहां बैठूं? किसी एकान्त स्थानमें जाकर विश्राम करूं।" इस प्रकार सोचते हुए वह दूर निकल गया। शहरकी बस्ती कम होने लगी, गंगाजी-का किनारा निकट था। थोड़ी दूरपर एक नीमका बड़ा पेड़ दिखाई पड़ा। पास आकर देखा, उसके नीचेकी भूमि सुन्दर-साफ़ पड़ी है, मोहन बैठ गया। उसकी आंखोंमें किशोरीके दुर्व्यवहारका चित्र घूम रहा था, उसे और कुछ न सूझा। सोचने लगा—"आज किशोरीके व्यवहारसे मालूम हो गया कि उसका स्नेह कैसा है! फिर मैंने आजतक यह भूल कैसे की, मैं उसे अपना कैसे समझता था? यदि मैं जानता कि हमीदके आनेपर मेरा इस प्रकार अपमान

होगा तो मैं आज घर ही न जाता। परन्तु अच्छा हुआ, उसके हृदय-की अवस्थाका पता तो चल गया। अब भी समय है, जब मैं अपने आपको उसके छलसे बचा सकता हूं। आजसे मैं प्रयत्न करूंगा कि मुझे तुरन्त कोई मकान मिल जाय, उसे मैं किरायेपर ले लूंगा और एक जीवनके लिये कौन कहे, हज़ार जीवनके लिये मैं उस किशोरीको भूल जाऊंगा। जिसने मेरा अपमान किया है, उसने ठीक किया है, उसका प्रेम तो दूसरेके साथ था।"

क्रोध और साहस धीरे-धीरे उसके हृदयमें बढ़ने लगा; किन्तु साथ ही अपनी भीरुता और कमज़ोरीपर उसे पश्चात्ताप होने लगा और कुछ क्षणोंमें वह सोचने लगा—"आजसे मैं उससे छूट जाऊंगा, परन्तु फिर क्या होगा? किशोरी इसकी क्यों परवाह करेगी?"

जिस समय किशोरी और मोहनमें प्रेम हुआ था उस समय-से लेकर आजतकका चित्र मोहनको दृष्टिमें घूमने लगा। उस समयसे लेकर आजतककी एक-एक बात आ-आकर मोहनके कानोंमें कुछ-का-कुछ कहने लगी। वह फिर सोचने लगा—"वह मेरा कभी प्यार न करती थी, मुझे इस बातपर विश्वास नहीं। वह प्यार करती थी, मैं भी प्यार करता था। उसने मेरे लिए कितने अपमान—कितनी बातें सही हैं, उन्हें मैं कभी भुला नहीं सकता। ठाकुर साहबकी उलटी शिक्षा, भाबीके असत्य आक्रमण, बूढ़ी नानीके युद्ध और नौकरानी सुन्दरियाकी शिकायतें उसके प्रेमको कम न कर सकीं। उसके हृदयमें प्रेम था, आज चाहे

न हो। वह किशोरी मुझसे छूट जायगी, मैं उससे छूट जाऊंगा।" कहते-कहते उसने दुःख और वेदनासे अपनी आंखों और मुंहको खद्दरकी टोपीसे ढक लिया और फूट-फूटकर रोने लगा। थोड़ी देरमें मुंह खोला, आंसू रुके, देखा, अभी धूप तेज़ है, पास ही गङ्गा लहरा रही हैं, इधर-उधर थोड़ी दूरीपर जाते हुए आदमी नज़र आ रहे हैं। उसी समय बड़े ऊंचे स्वरमें एक आदमी गाता हुआ चला आ रहा था—

मुर्ग-दिल मत रो यहां, आंसू बहाना है मना।
इन कफ़सके क़ैदियोंको, आब-दाना है मना॥

मोहनने चौंककर उसकी ओर देखा, उसके पास आते-आते उस गानेवालेने उस गानेको तीन बार दुहराया। उसका गला अच्छा था, उसका ढङ्ग अच्छा था। मोहन सोचने लगा, मानों मुझे शिक्षा देने आया है। मोहन उसकी ओर ताकता रह गया और वह धीरे-धीरे उसके पाससे होकर आगे चला गया। उसके निकल जानेपर मोहनने उठकर घरका रास्ता लिया।

[३]

प्रातःकालके आठ बजे होंगे, मोहन अपना सामान नये मकानमें भेज रहा है, किशोरीने यह देखकर और जल-भुनकर मोहनका एक कोरा कपड़ा, जो उसके पास रखा हुआ था, निकालकर एक लड़केके हाथसे मोहनके पास भेज दिया। मोहनने यह देखकर अपना संदूक खोला। उसमें किशोरीका एक बार

चित्र रखा हुआ था, उसे निकालकर किशोरीको देकर उससे अपने दो चित्र लौटा देनेके लिए कहा। किशोरीने तुरन्त अपने बक्समेंसे मोहनके चित्र निकालकर दे दिये, और कहा—"मैं अपना चित्र नहीं ले सकती, मैंने तो दिया नहीं था, भाभीने दिया था, उनको जाकर दीजिये।"

मोहन—"हां, आपके न लेनेपर मैं उन्हींको जाकर दे दूंगा।"

किशोरी—"हां, उनको आप जाकर दे सकते हैं या बाहर सड़कपर जाकर फेंक दीजिये। आज यह सब हो क्या रहा है, कुछ समझमें नहीं आया। कुछ बात भी तो मालूम हो, आख़िर बात क्या है?"

मोहनने कुछ भी उत्तर न देकर थोड़ी देरमें कहा—"मैं एक बार फिर कहता हूं, यह चित्र रक्खा है, आप ले सकती हैं।"

किशोरीने उसे उठा लिया और बाहर जाकर पक्की चट्टानपर उसे पटक दिया। चित्रका शीशा चूर-चूर हो गया, क्रोधमें किशोरी अनेक प्रकारकी बातें ज़ोर-ज़ोरसे कहने लगी। रामेश्वर बाहर गये थे, अचानक आकर देखा कि किशोरीके पैरोंके पास चित्र पड़ा हुआ है, और चित्रका शीशा चूर-चूर हो गया है। रामेश्वरके पूछनेपर किशोरीने सारी बातें संक्षेपमें कह दीं। मोहन कमरेके भीतर अपने संदूकके पास खड़ा था। रामेश्वरने पूछा—"किशोरी, तूने चित्रको क्यों पटक दिया?"

किशोरी—"मैंने उनसे बार-बार कहा कि मैं इसे वापस न

लूंगी, पर वे न माने। मुझे लगा ग़ुस्सा, मैंने उठाकर पटक दिया।"

किशोरीकी बात सुनकर मोहनने कहा—"पहले मेरा कपड़ा लौटाया गया, उस समय मैंने आवश्यक समझा कि जिसकी जो चीज़ हो,लौटा दी जाय। इसपर मैंने चित्र लौटा दिया।"

किशोरी—"मैंने कई बार पूछा कि यह सब आज क्या हो रहा है, इन सब बातोंका आख़िर क्या मतलब होता है, परन्तु इसका कोई उत्तर नहीं मिला। मैंने भी देखा कि जब यही होना है तब ऐसा ही सही।"

रामेश्वर—"मोहनने तेरा चित्र वापस किया था, तूने उसका चित्र दे दिया था, परन्तु उसको तोड़ डालनेकी क्या आवश्यकता थी?"

किशोरी—"मैंने कहा था कि जिसने दिया हो उसको लौटाइये, पर वे न माने। मुझे क्रोध आ गया, मैंने उसे ज़ोरसे पटक दिया।"

रामेश्वरने क्रोध और अप्रसन्नताके साथ कहा—"यह सब नुकसान किसका हुआ? तुझे कुछ सूझता है। एक-एक पैसेके लिये तो हम तंग हैं और तेरी यह दशा है। तेरे क्रोधने तो मुझे यहांतक—इस दशातक पहुंचाया है, अब तू क्या चाहती है? मेरी समझमें नहीं आता कि यह सब रोज़ क्या हुआ करता है।"

कुछ देरमें मोहन वहांसे चला गया।

[४]

आज किशोरी और रामेश्वर कानपुरसे विदा हो जायंगे। रामेश्वरके बहनोई साहब आ गये हैं, बहन और मां भी साथ आयी हैं। किशोरी ननद और सासुके पास बड़े शिष्टाचारके साथ बैठी है।

आज दो-तीन दिनोंसे मोहन घर नहीं आया, जिस रामेश्वर और किशोरीके पास वह रात-दिन रहकर भी तृप्त न होता था, आज उन्हीं लोगोंसे विदाके समयमें भो मिलना कठिन हो रहा है। बहनोई साहबको भोजन खिला-पिलाकर रामेश्वर मोहनके लिए विद्यालयको चले, और वहांसे मोहनको लेकर रामेश्वर घर लौट आये। रामेश्वरके बहनोई बाबू राम-गोपालसे मोहनका साक्षात् हुआ। किशोरो भीतर कमरेमें एक-स्थानपर खड़ी हुई थी। मोहनने एक बार उसकी ओर देखा, उसका मुख मलिन हो रहा था। पहलेका-सा उसका चंचल-जीवन आज न था। सासु और ननदके शासन-कालमें वह अपने आपको बहुत शिष्ट प्रमाणित कर रही थी। रामेश्वर शीघ्रताके साथ सामान बांध-बांधकर तैयार करने लगे। मोहनने पूछा—"यह सामान अभीसे क्यों बांध रहे हैं?"

रामेश्वर—"आज ही, दो घंटेके भीतर स्टेशन चला जाना है, चार बज चुका है। सात बजे तो एक्सप्रेस छूट जाती है, उसी इक्सप्रेससे जाना है।"

मोहन—"क्यों, आज ही क्यों जाना है? आज तो हम नहीं जाने देंगे।"

किशोरीने मोहनकी बात सुनकर मन-ही-मन कहा, "अब होश आया है।" रामेश्वरने मोहनकी बातका उत्तर देते हुए कहा—"मुझसे कहनेकी क्या आवश्यकता है, बहनोई साहबसे कहो।"

मोहनने बा० रामगोपालके पास जाकर कहा—"बाबूजी, आज तो आप जा नहीं सकते। यदि आप बहुत जल्दी करते हैं, तो कल चले जाइयेगा।"

रामगोपालने उत्तर दिया—"हम स्वयं चाहते थे कि कानपुर-में दो-चार दिन रहें, परन्तु हमारे पास जो रेलवे पास है, उसकी तारीख़ समीप आ गयी। हमें आते हुए बीचमें देर लग गयी। इसलिए हम किसी प्रकार आज रुक नहीं सकते।

बड़ी देरतक बातें होती रहीं, परन्तु रामगोपालने किसी प्रकार रुकना स्वीकार नहीं किया। रामेश्वर जहां सामान तैयार कर रहे थे, मोहन जाकर खड़ा हो गया। पास ही किशोरी खड़ी थी। उसने मोहनकी ओर देखा; उसके नेत्रोंमें आंसुओंका आभास मिल रहा था। यह देखकर किशोरीका क्रोध जो अभी-तक भरा हुआ था, मिटकर उसका हृदय अधीर हो और एक प्रकारकी अदृश्य वेदनासे घबराने लगा। किन्तु मोहन किशोरीसे और किशोरी मोहनसे एक शब्द भी बोल न सकती थी। आज उसकी स्वतन्त्रताका दिन न था, सासु-ननद्के शासनके पुराने

बन्धनका युग था। किशोरीके दो-एक बात इशारेसे कहनेपर भी मोहनकी समझमें कुछ न आया।

सायंकालके छः बजे होंगे, रामेश्वर, किशोरी और रामगोपालके साथ स्टेशनपर पहुंच चुके हैं। रामगोपाल तो दौड़-धूपकर सामानको बुक करा रहे हैं, रामेश्वर उनकी सहायतामें हैं। मोहन सबसे दूर कभी इधर कभी उधर दौड़ा-दौड़ा फिरता है। उसके पेटमें आग-सी लगी है, हृदय क्षत-विक्षत हो रहा है। किशोरी सासुके पास बैठी हुई अपने आपको काठके समान समझ रही है।

सामान बुक हो गया। रामगोपाल रामेश्वर आदिको लेकर प्लेटफार्मकी ओर गये। सबके पीछे-पीछे मोहन भी प्लेट-फार्मपर गया। गाड़ीके आनेमें कुछ देर थी, रामगोपाल मोहनसे कुछ बातें करने लगे। इतनेहीमें गाड़ी आती हुई देख पड़ी, प्लैटफार्मके सभी यात्री हँसने लगे। बातकी-बातमें गाड़ी प्लैटफार्मपर आकर खड़ी हो गयी। रामगोपालने एक कम्पार्टमेंटमें सबको लेकर बिठा दिया।

रामेश्वर कुछ देरतक मोहनसे बातें करते रहे और अन्तमें गाड़ीके छूटनेका समय निकट जानकर मोहन कहने लगे—"किशोरीसे मिलना चाहता हूं!"

रामेश्वरकी बात सुनकर मोहनका हृदयस्थल विदीर्ण हो गया, उसने अपने आपको भरसक संभाला और कहा—"एक मिनटके लिए यदि बुला सकें तो बुलाइये।"

रामेश्वर दौड़कर किशोरीके पास गया और उसे लिवा लाया। किशोरीने आते ही कहा—"महाशयजी! मुझे क्षमा कीजिये, आप दुःख न कीजिये, मुझे पत्र अवश्य भेजते रहियेगा।"

मोहन अपने आपको संभाल न सका, तुरन्त अपने रूमालसे मुंह ढककर फूट-फूट कर रोने लगा और पाकेटसे कुछ रुपये निकाल उन्हें किशोरीके हाथमें देकर कहा—"बस जाओ, ईश्वर तुम्हे प्रसन्न रक्खे।"

किशोरी आकर गाड़ीमें बैठी थी कि गाड़ी फ़क-फ़क करके चल पड़ी।

× × × ×

कानपुर छोड़े हुए किशोरीके पूरे तीन वर्ष बीत चुके हैं। इस बीचमें मोहनसे पत्र-व्यवहार होता रहा है। किशोरी अब सुखी है, स्वस्थ और मोटी ताज़ी है।

एक दिन अपने मकानमें बैठी हुई किशोरी रामेश्वरसे अठखेलियां कर रही थी, दोनों हंसीके मारे पेट फुला रहे थे, अचानक किसीने आवाज़ दी—"बाबू रामेश्वर!"

किशोरीने चौंककर कहा, "देखो, कोई बुला रहा है।" रामेश्वर इस हंसी और खेलको छोड़कर बाहर न निकले और यह कहते हुए फिर हंसने लगे, 'कोई पागल होगा।' उसी दम दूसरी आवाज़ आयी—"बाबू रामेश्वर!"

किशोरीने उठकर दरवाज़ेकी ओर बढ़ते हुए कहा—"देखो, तुम बाहर निकलते नहीं हो।"

किशोरीके साथ रामेश्वरने बाहर आते हुए पूछा "कौन है?"

"एक पागल।"

बाहर आकर रामेश्वर और किशोरीने देखा, हाथमें एक हैण्ड-बेग लिए खद्दरके पवित्र स्वच्छ वस्त्रोंसे सुसज्जित एक नवयुवक खड़ा हुआ उत्तर दे रहा है—'एक पागल।'

"अरे! मोहन?" कहते हुए रामेश्वर मोहनके गलेमें लिपट गये। मोहनने जब किशोरीकी ओर देखा तो उसे मालूम हुआ कि किशोरी उसकी ओर टकटकी लगाकर देख रही थी, उसकी आंखें आंसओंसे डबडबाई हुई थीं।

अमर आशा

उस समय आषाढ़की अन्तिम सन्ध्याका महासमारोह था। यद्यपि मैं प्रायः नित्य ही प्रभात-शोभा और सन्ध्या-सौन्दर्य्यका दर्शन किया करता हूं, पर उस दिन आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमाकी वह अरुणरागमयी सन्ध्या अपनी जिस दिव्य माधुरीके साथ इस विश्वमण्डलपर अवतीर्ण हुई थी, वैसी अपूर्व सौन्दर्य्य-श्रीका पुण्य-दर्शन मैंने अपने जीवनमें अनेक बार नहीं किया था। दिवसके तृतीय प्रहरकी समाप्तितक तो धारावाही वर्षा होती रही, पर चतुर्थ प्रहरके प्रारम्भ होते ही वर्षा बन्द हो गई और मेघ-निर्मुक्त आकाश-मण्डलमें सूर्य्यदेवकी समुज्ज्वल कान्ति उत्फुल्ल हो उठी। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि उस समय पश्चिम-दिशा नवरसमयी और नवरङ्गमयी-सी प्रतीत होती थी। और सन्ध्याके उस स्निग्ध-प्रकाशमें मेरे छोटेसे उपवनने भी अपूर्व शोभा धारण की थी। इस समय वह सौन्दर्य्य और सौरभका शान्ति-निकेतन-

सा प्रतीत हो रहा था। वृक्षोंका प्रत्येक पल्लव शीतल जल-धारामें स्नान करके प्रसन्नवदन हो रहा था; अलमस्त बेला अपने मस्त सौरभके मदमें खिलखिलाकर हंस रहा था और लजीली जुहीलताके पल्लवाञ्चलसे एकाध अधखिली कली प्रकट होकर उस समय मुस्कुरा उठती थी, जब रसिक समीर बरवश उसके अवगुण्ठनको परिभ्रष्ट कर देता था। कैसा मनोरम, मधुर-मञ्जुल दृश्यपट था! कविकी कल्पनाके समान मधुर, यौवनके स्वप्नके समान सुन्दर, विजयकी वीणाके समान संगीतमय, एवं स्वर्गके पुण्य-पारिजात-वनके समान सौरभयुक्त था! ऊपर गगन-मण्डलमें, नीचे पृथ्वी-मण्डलपर, मेरे सामने दूरतक, पृथ्वी और स्वर्गकी मिलन-सीमातक, चारों ओर, आनन्दकी कलकल-मयी मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी और मैं उसमें आकण्ठ निमग्न था। मैं उन्मुक्त दिव्य वायु-मण्डलमें, दिगन्त व्यापी सौन्दर्य्यके महासमारोहके बीच, एवं विश्व-व्यापी स्वर्ग-संगीत की मधुर-धाराके मध्यमें स्थित होकर अपनी पुण्य-प्रकाश-मयी आत्माके अनन्त आनन्दमय स्वरूपका परम शान्तिमय अनुभव कर रहा था।

परन्तु दुर्भाग्यका कुछ ऐसा रहस्यमय विधान है कि वह इस मत्सररूप विश्वकी मरीचिकामयी गोदमें खेलनेवाले जनको विशुद्ध आनन्दके शान्ति-कुञ्जमें अधिक कालतक विहार करनेका यथाशक्य अवसर प्रदान नहीं करता। इसीलिये, जिस समय उस धूल-धूसरित प्रतीची दिशाके अञ्चलके एक छोरपर एक

दिव्य नक्षत्र उदय हो रहा था और जिस समय दिनभरके अन-वरत परिश्रमके उपरान्त खेतसे घरकी ओर लौटते हुए किसी नवयुवक कृषककी प्रेम-रागिनीका मधुर स्वर निमेष-व्यापी दर्शनकी आशासे द्वारदेशपर खड़ी हुई किसी सरला बालिकाके कर्ण-कुहरोंमें सुधाकी वर्षा कर रहा था, ठीक उसी समय मेरे बाल-बन्धु चन्द्रकान्तकी अर्ध-अवगुण्ठनवती परिचारिकाने मुझे उस आनन्द-समाधिसे जगा दिया। उसके मुखसे निकले हुए "बाबूजी"ने क्षणभरमें मेरे उस सुवर्ण-राज्यको,किसी कुपित दृष्टिके अभिशापके समान, विनष्ट कर दिया। मैंने कुछ-कुछ विरक्तिके स्वरमें कहा—"क्या है री गङ्गा?"

गङ्गाने मेरी उस विरक्तिको जान पाया या नहीं—सो तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु उसने बड़े करुण स्वरमें उत्तर दिया, "बाबूजीने आपको बुलाया है?"

मैंने उत्कण्ठित भावसे पूछा—"क्यों,क्या उनकी तबीयत कुछ अधिक खराब हो गई है?"

गङ्गाने विक्षब्ध भावमें उत्तर दिया—"कुछ ज्यादा खराब तो मालूम नहीं होती है, पर न मालूम आज क्यों बार-बार वे यह कह उठते हैं कि अब मैं जाता हूं—अब नहीं रहूंगा।"

कहते-कहते गङ्गाकी आंखोंमें आंसू आ गये—मेरा हृदय भी किसी अमंगलकी आशंकासे आकुल हो उठा। मैंने कहा—"तू चल, मैं अभी आता हूं।"

गङ्गा चल दी, अभी वह दो ही पग आगे बढ़ी होगी कि मैंने

पुकार कर कहा—"गङ्गा! बाहर रामू होगा। उससे कह दे कि गाड़ी जल्द तैयार कर ले।"

गङ्गा अच्छा कहकर चली गई। उस समय संध्याका अन्धकार प्रगाढ़तर हो गया था और कौमुदी-धवल आकाशमें कहीं-कहीं उज्ज्वल नक्षत्र देदीप्यमान हो रहे थे। उसी समय मेरी दृष्टि प्राची दिशाके प्रांगणमें विहार करते हुए पूर्णचन्द्रकी ओर उठ गई, पर उस समय उनके मुख-मण्डलपर मुझे ललित हास्य-लक्ष्मीका विमल विलास नहीं दिखाई दिया; मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों वे किसी अव्यक्त वेदनासे गम्भीर होकर एक टक पृथ्वीकी ओर देख रहे हैं, मानों आज उनके हृदयमें किसी विषादमयी चिन्ताने अधिकार कर लिया है और उस चिन्ताकी आकुल व्यथाने उनकी उस चिरहास्यमयी मुद्राको दुःखकी छायासे आवृत कर दिया है। मैं एक टक उनकी ओर देखने लगा। मेरे देखते-ही-देखते सहसा एक घन-कृष्ण मेघने इस पूर्ण सुधाकरको अपने अन्तरालमें छिपा लिया। क्षणभर पहिले आकाश और पृथ्वीको जो चन्द्रिका परिप्लावित कर रही थी, वह सहसा विलीन हो गई और धीरे-धीरे अन्धकारके आवरणमें सारी प्रकृति-शोभा अन्तर्हित हो गई। उसी समय, घोर गर्जन करती हुई सौदामिनी, प्रलय-देवताकी कृपाणकी भांति, चमक उठी। धीरे-धीरे समस्त आकाश-मण्डलसे मेघ-मालायें प्रधावित होने लगीं। एक मुहूर्त पहिले जो निखिल ब्रह्माण्ड एक अभिनव माधुरीकी शोभासे विलसित हो रहा था, वही अब अत्यन्त भीषण हो

उठा। और यह भीषण परिवर्तन मुझे किसी अमंगलमयी घटनाकी प्रस्तावनाके समान प्रतीत हुआ। मेरा हृदयाकाश भी इस समय आशंका और आकुलताकी मेघमालाओंसे आच्छन्न था और मेरी भावना तीव्र सौदामिनीकी भांति बार-बार चमक उठती थी। प्रवृत्ति प्रकृतिका निराकार स्वरूप है।

२

चन्द्रकान्तका परिचय तो आगे दूंगा, पर यहां इतना अवश्य कहूंगा कि ६ महीनेसे चन्द्रकान्त क्षय-रोगसे ग्रसित है। दो महीने हुए तबसे तो वह अपनी शय्यासे भी उठने योग्य नहीं रहा है। हम सभी जानते थे कि चन्द्रकान्त धीरे २ मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहा है।

चन्द्रकान्तका घर है तो छोटा-सा, पर है परिष्कृत और स्वच्छ। उसे देखते ही प्रतीत होता था कि यह एक दरिद्रकी कुटी है, पर उस दरिद्रकी कुटीकी स्वच्छता देखकर तो यही कहना पड़ता है कि उसकी अधीश्वरी अवश्य ही तपोमयी राज्यलक्ष्मी है। मैं गाड़ीसे उतर कर सीधा चन्द्रकान्तके कमरेमें चला गया। चन्द्रकान्त एक ऊनी शाल ओढ़े हुए शय्यापर लेटा हुआ था और बड़े उत्कर्षपूर्वक द्वारकी ओर देख रहा था। मुझे देखते ही उसके मुख-मण्डलपर आनन्दकी ज्योति उद्भासित हो उठी, उसके अधरोंपर स्वतः ही हास्य-रेखा लीला करने लगी। उसने धीरे-

धीरे अपना क्षीण हाथ उठाकर मेरा हाथ अपने हाथमें ले लिया और बड़े स्नेह और आदरसे अपने पास ही, अपनी शय्यापर बैठा लिया। यद्यपि नित्य ही मैं एक बार और कभी कभी दो बार उसे देखने आया करता था, सच पूछिये तो उसकी औषधि इत्यादिका समस्त प्रबन्ध मैं ही करता था, पर उस दिन उसके स्वागत और सत्कारमें एक विचित्र प्रकारकी नूतनता थी, वह लिखकर अथवा कहकर बताने योग्य नहीं है, पर उसे स्नेह-सूत्रमें आबद्ध दो हृदय ही भलीभांति अनुभव कर सकते हैं। जैसे किसी बड़ी यात्रापर प्रस्थान करते समय सहसा बिना सूचनाके-बिना संवादके कोई अपना अनन्य बन्धु आ जाय उस समय हृदयमें आनन्दका जो प्रबल उल्लास हिल्लोलित होने लगता है, ठीक उसी प्रकारकी आनन्द-ज्योति चन्द्रकान्तके सुन्दर किन्तु पाण्डु, मुखमण्डलपर लीला करने लगी थी। मैंने भी हंसीके द्वारा ही उसकी आनन्दमयी मुस्कानका अभिनन्दन किया, परन्तु मेरी हंसीमें विषादका ऐसा स्पष्ट सम्मिश्रण था,जो चन्द्रकान्त-की तीक्ष्ण आंखोंसे नहीं छिप सका। उसने अपनी विशाल आंखों द्वारा मानों [मेरी स्नेहमयी भर्त्सना की, मैं उसके मुख-मण्डलकी ओर एकटक होकर देखने लगा। मेरी आंखोंमें आंसू उमड़ आये, बिना बताये, बिना सूचित किये ही, मेरे हृदयमें यह निश्चय हो गया कि मेरे शैशवका सहचर, मेरे कैशोरका सर्वस्व-मेरे यौवनका विश्वासी बन्धु इस दारुण रजनीमें महायात्रापर जानेके लिये प्रस्तुत है।

शय्याके दूसरी ओर चन्द्रकान्तकी सुशीला पत्नी घूंघट काढ़े हुए बैठी थी। यद्यपि उसका मुख-मण्डल आवृत था, परन्तु उसके वक्षस्थलके शीघ्र उत्थान और पतनको देखकर कोई भी सहृदय यह भलीभांति जान सकता था कि उस अवगुण्ठनके नीचे-नीचे दो बड़ी-बड़ी आंखें जलसे आर्द्र हो रही थीं, उस घूंघटके हाहाकारकी तीव्र ध्वनिको बाहर निकलनेसे रोकनेके लिये मोती-के समान दन्त-श्रेणीने कमलके कोमल पल्लवके समान अधरको ऐसी निर्दयतासे दबा रखा था कि उसमें स्थान-स्थानपर दो-एक रक्त-कण फूट पड़े थे। एक बार बड़ी विषादमयी दृष्टिसे मैंने उस अवगुण्ठनवती विषाद-प्रतिमाको देखा। अबकी बार झर-झर करके मेरी आंखोंसे आंसुओंकी धारा निकल पड़ी—इसे रोक रखनेका मेरा सारा प्रयास विफल हुआ।

चन्द्रकान्तने कोमल स्वरमें कहा—"यह क्या भाई विश्वनाथ, चाहिये तो यह था कि तुम मुझे इस महा-प्रस्थानके समय सान्त्वना देते, अपने उपदेशोंसे मेरी आत्माको सबल बनाते और कहां तुम स्वयं ही इतने अधीर हो रहे हो। सोचो तो भला, तुम्हें इस प्रकार अधीर देखकर :हमारी क्या दशा होगी!"

पर आंसुओंका प्रवाह ऐसी शीघ्रतासे रुकनेवाला नहीं था। दो-तीन मिनिटतक मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, बड़ी चेष्टाके उप-रान्त-प्रयासके उपरान्त मैंने अपने उमड़ते हुए हृदयके विषादभरे उच्छ्वासको रोककर कहा—"भाई चन्द्रकान्त! मेरी निर्बलताको

क्षमा करो। पर यह कौन कहता है कि तुम महाप्रस्थानपर जा रहे हो, तुम अच्छे हो जाओगे।"

चन्द्रकान्त अट्टहासकर उठा। उसने हंसते हुए कहा—"नहीं बन्धुवर! इस झूठी सान्त्वनासे कोई लाभ नहीं है। आजकी रात मेरे जीवनकी अन्तिम रात है—यह मैं निश्चयरूपसे अनुभव कर रहा हूं। दूसरी बात यह है कि मैं महाप्रस्थानपर जानेसे रत्तीभर भी भयभीत अथवा दुःखी नहीं हूं। एक बात मैं जानना चाहता हूं—तुम दर्शनशास्त्रके विद्वान हो, तुम आध्यात्मिक बातोंमें रुचि रखते हो, इसीलिये मैं तुमसे अपने हृदयकी शंकाका समाधान कराना चाहता हूं।"

उसके उस ज्योति-प्रदीप्त मुखमण्डलपर खेलनेवाली निर्मल लाल रेखाको देखकर मैं सचमुच चकित हो उठा। मैं चन्द्रकान्तके चरित्रकी दृढ़तापर सदासे मुग्ध था, पर उस दिन, उस मुहूर्तमें, जब वह इस पार्थिव जीवनको परित्याग करके महायात्रापर प्रस्थान कर रहा था,मैंने उसके मुख-मण्डलपर जो निर्भीक प्रसन्नता, जो विमल उल्लास, जो सरल हास्य देखा, उसे देखकर मैं वास्तवमें आश्चर्य्यसे अभिभूत हो गया। मैंने कहा—"पर तुम्हें तो आध्यात्मिक विषयोंसे सदा अरुचि रही है।"

उसने मन्द-मन्द मुस्काते हुए कहा—"हां,तुम्हारा यह कहना ठीक है। आजतक मैं इस विश्वमें रहता था, मेरा जीवन इसी विश्वके नियमोंसे परिचालित होता था, इसीलिये पार्थिव नियमोंपर मेरा वैसा अनुराग था, पर अब इस महायात्राके समय,

किसी दूसरे अदृश्य जगतको प्रस्थान करते समय, मेरा आध्यात्मिक विषयोंमें अभिरुचि प्रकट करना एकान्त अस्वाभाविक तो नहीं है भाई विश्वेश्वर ?"

उसके इस सरल तर्कका मैं भी उत्तर दे सकता था। मैंने कहा—"भाई, यथाशक्ति मैं तुम्हारी शङ्काका समाधान करूंगा, पूछो।"

उसने गम्भीर भावमें पूछा—"मैं यह जानना चाहता हूं कि मेरे इस पार्थिव अन्तके उपरान्त क्या मेरी जीवन-धाराकी भी समाप्ति हो जायगी ? मैं जानना चाहता हूं कि इस विश्वकी रङ्गभूमिपर जिसे मैंने अपने हृदयका हृदय, प्राणोंका प्राण, जीवनका जीवन बनाकर रखा था, उससे क्या मैं सदाके लिये वियुक्त हो जाऊंगा ? क्या मृत्युके उस पार, इस पार्थिव जीवनकी यवनिकाके दूसरी ओर एक विशाल अनन्त शून्य है अथवा वहां भी मैं अपने इस जीवनके साथ अपने प्रेमकी, स्नेहकी, आनन्दकी, अनुरागकी स्मृति ले जा सकूंगा और वहांपर उस आध्यात्मिक जगतके किसी निभृत कुञ्जमें मैं अपनी साधनाके द्वारा फिर अपने प्रेमके पुण्य पात्रको प्राप्त कर सकूंगा ? बताओ बन्धुवर, यह जीवनकी धारा और यह प्रेमका प्रवाह क्या इस पार्थिव जीवनके साथ ही तो विलीन नहीं हो जायंगे ?"

आवेश और उद्वेगसे चन्द्रकान्त जल्दी जल्दी-सांस लेने लगा, पर इस समय उसके मुख-मण्डलपर एक अपूर्व तेजोमय भाव था, और उस भावके ऊपर एक अनिर्वचनीय पवित्रता नृत्य कर रही

थी। वह एक टक मेरी ओर देखरहा था; मानों मेरा एक क्षण, एक निमेषतकका मौन रहना उसे इस समय असह्य था! वह उत्कण्ठासे उद्वेलित हो रहा था; जबतक मैं उत्तर दूं, तबतक उसने एक बार और कहा—"बताओ, बताओ बन्धुवर!"

मैंने भी गम्भीर भाव धारण कर लिया अथवा स्वतः ही मेरे मुख-मण्डलपर गम्भीरताका आधिपत्य हो गया। आध्यात्मिक विषयोंपर मेरा अनन्य अनुराग है और उनकी व्याख्या करना मेरा इष्ट कर्म है। मैंने धीरे-धीरे कहना प्रारम्भ किया—"नहीं चन्द्रकान्त, तुम्हारे इस मास-पिण्डके साथ तुम्हारे जीवनकी समाप्ति नहीं हो सकती; तुम्हारे जीवनकी चैतन्यमयी धारा अक्षय है, अविनाशी है, उसे अपने महाविवरमें विलीन कर लेनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। इसीलिये हमारे ऋषियोंने हमारे पार्थिव अन्तको महायात्राके नामसे अभिहित किया है और पाश्चात्य देशोंके मनस्वी दर्शन-शास्त्री भी मृत्युको दीर्घ-यात्रा कह कर स्वीकार करते हैं। फिर यह कैसे सम्भव है कि इस जीवनकी सुखमयी अथवा दुःखमयी स्मृति-राशिको वह धारा यहीं छोड़ जाय? तुम अपने पवित्र प्रेमकी स्मृतिसे वञ्चित नहीं हो सकते। यह प्रेम-स्मृति तुम्हें उस आध्यात्मिक आलोकसे आलोकित प्रदेशमें शान्ति, सन्तोष और आनन्द प्रदान करेगी। साधना सफलताहीका नामान्तर है और यदि तुमने साधनाका आश्रय उस दिव्य लोकमें भी परित्याग नहीं किया, तो विश्वकी वह आदि शक्ति, जो विश्वात्मिका बनकर निखिल ब्रह्माण्डोंमें परिव्याप्त है और जिसमें निखिल ब्रह्माण्ड

स्वयं लीला करते हैं, अवश्य तुम्हें तुम्हारे प्रेमके पात्रसे, यथा समय, साधनाकी सफलतापर, संयोजित करेगी, इसमें रत्तीभर सन्देह नहीं।"

शान्त, स्थिर, गम्भीर भावसे चन्द्रकान्त मेरी इस वक्तृताको सुनता रहा। मैंने देखा, उसके मुखपर आवेग नहीं, उत्कण्ठ नहीं, चाञ्चल्य नहीं, एक अनन्त-आनन्दमयी सन्तोष-शोभा जगमगा रही है। उसने कहा—"भाई विश्वेश्वर तुमने मुझे अमर जीवनका अमृत-मय दृश्य दिखला दिया है, अब मैं विशेष आनन्द, अपूर्व शान्तिके साथ अपनी इस महायात्रापर जा सकूंगा। तुमसे यह बात छिपी नहीं है, कि मैं सुवर्ण-मालाको कितना प्यार करता हूं। यह मेरे जीवनकी अक्षय आलोक-माला है और इस महाप्रस्थानके समय मुझे यदि आशङ्का थी, दुःख था, तो यही कि मैं इस पृथ्वीपर अपनी जिस पुण्य-प्रेम-पात्रीको छोड़े जा रहा हूं, उसका दर्शन, मिलन, आलिङ्गन,मुझे फिर प्राप्त होगा या नहीं? पर तुमने एक दिव्य देव-दूतकी भांति परम तेजोमय आचार्य्यकी भांति, मुझे दिव्य ज्योतिका दर्शन करा दिया है और अब मेरा अटल विश्वास है कि मृत्युके उस पार फिर मुझे मेरी यह प्रेमकी प्रतलिका मिलेगी।"

इतना कहकर चन्द्रकान्त बातें करते-करते थककर चुप हो गया, फिर उसने एक अपूर्व अनुराग-भरी दृष्टिसे उस अवगुण्ठनवती बालिकाकी ओर देखा, बोला—"सुवर्णमाले! अब चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है, हमारा यह प्रेम अक्षय है, अवि-

नाशी है और हम दोनों फिर उस दिव्य लोकमें मिलेंगे। इधर आओ।"

धीरे-धीरे सुवर्णमाला स्थानसे उठी, और अपने प्राणेश्वर-के सन्निकट आकर खड़ी हो गई; उसने कहा—"जल दो।"

सुवर्णमालाने जल्दीसे एक कटोरीमें जल दिया। उसे पीकर चन्द्रकान्त फिर कहने लगा—"भाई विश्वेश्वर! मेरी एक प्रार्थना है, क्या स्वीकार करोगे?"

मैंने कहा—"मैं अपने प्राणोंतक तुम्हारी प्रसन्नताके लिये परित्याग कर सकता हूं।"

चन्द्रकान्तने हंसकर कहा—"इसकी आवश्यकता नहीं है—उन्हें किसी रक्त-कमल जैसे चरणोंपर समर्पण करना। मैं तो स्वयं अपने प्राणोंको तुम्हारे हाथोंमें देना चाहता हूं।"

इतना कहकर उसने धीरे-धीरे सुवर्णमालाका हाथ अपने हाथमें ले लिया, और दूसरे हाथसे उस लज्जाशीला बालिकाका अवगुण्ठन खोलते हुए कहा—"देखो विश्वेश्वर! अपनी इस सुवर्ण-मालाको मैं तुम्हारे हाथोंमें सौंप रहा हूं। मैं तो जाता हूं; पर जबतक इसका पार्थिव जीवन है, तबतक तुम इसकी रक्षा करना। देखना, विश्वका विष-वाण, कपटकी प्रच्छन्न कृपाण, एवं पापका तीव्र प्रलोभन इसके जीवनको और अग्निमय न बना सके। यह मेरे प्राणोंकी साकार प्रतिमा है, मेरी आत्माकी मूर्त्तिमती आलोकमाला है—इसे तुम अपनी उदारताकी शीतल छायामें आश्रय देना। बोलो! प्रतिश्रुत होते हो।" इससे पहिले

चन्द्रकान्तने धीरे-धीरे सुवर्णमालाका हाथ अपने हाथमें ले लिया और कहा, "विशेश्वर" अपनी इस सुवर्णमालाको मैं तुम्हारे हाथों सौंप रहा हूं।

आजतक मैंने सुवर्णमालाको नहीं देखा था। मैंने देखा कि मेरे सामने मानों स्वर्गकी लक्ष्मी खड़ी है। उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंसे आंसूकी धारा बह रही थी; उस समय वह मूर्त्तिमती करुणासी प्रतीत होती थी! मैंने कहा—"मैं वचन देता हूं कि मैं तुम्हारी सुवर्णमालाकी यथाशक्ति देखरेख करनेमें कुछ उठा नहीं रखूंगा।"

चन्द्रकान्तके मुखपर आनन्द और सन्तोषकी आभा जगमगा उठी। उसने कहा—"सुवर्णमाले! मैं तुम्हें बड़े पवित्र हाथोंमें सौंपे जा रहा हूं। बड़े सौभाग्यसे ऐसे बन्धु मिलते हैं, यथाशक्ति अपने पार्थिव जीवनको दिव्य प्रेमकी साधनामें लगा देना, यही शांति और सन्तोषकी प्राप्तिका एक मात्र उपाय है।"

सुवर्णमाला रो उठी, और उसके हृदयका बांध टूट गया। उसने रोते-रोते अपना मुख अपने प्राणेश्वरके वक्षस्थलपर रख दिया। मैं भी आर्द्र लोचन होकर वहांसे उठ बैठा, और उन प्रेममय दम्पतिको अन्तिम विदाका अवसर देनेके लिये वहांसे बाहर चला आया। उन दोनोंके उस अत्यन्त दुर्लभ मुहूर्तको मैंने अपनी उपस्थितिसे नष्ट करना नितान्त अनुचित समझा।

विश्वास! विश्वास स्वर्ग और संसारको परस्पर सम्मिलित करनेवाला सुवर्णसेतु है।

दूसरे दिन, पहर दिन चढ़े, हमने चन्द्रकान्तके पार्थिव अंश-को अग्निदेवको समर्पण कर दिया, और उस समय—उस पार्थिव अंशकी पूर्णाहुतिके समय, मैंने उस अर्ध-मूर्च्छिता, आलुलायित

केशा, धूलि- धूसरित सुवर्णमालाकी जो विषादमयी विधवा-मूर्ति देखी थी, उसके स्मरण-मात्रसे आज ८ वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी, मेरे इन ज्योति-विहीन नयनोंसे अविरल अश्रु धारा बहने लगती है, परन्तु यह मैं निर्विवाद रूपसे कह सकता हूं कि वियोग-व्यथित विशुद्ध वैधव्यके श्रीचरणतलमें सर्वस्व त्यागी संन्यास ससम्भ्रम नतशिर हो जाता है; क्योंकि वह उतना पवित्र-उज्ज्वल, उतना तपोमय एवं उतना वैराग्यमय होता है! वैधव्य रमणी-जीवनकी अग्निमयी तपस्या है।

३

चन्द्रकान्त मेरा बाल-बन्धु था, यह बा त मैं ऊपर कह चुका हूं। जिस समय चन्द्रकान्तका देहान्त हुआ था, उस समय उसकी अवस्था लगभग २५ वर्षकी थी। उसकी प्राणेश्वरी सुवर्णमालाने उसी वर्ष अपने बीसवें वसन्तमें पदार्पण किया था।

चन्द्रकान्तने अपनी बाल्यावस्थाहीमें पिता-माताके पुण्य वात्सल्यको, दुर्भाग्यके दुर्विधानसे खो दिया था। परन्तु दारुण दुर्भाग्यके उस घोर अन्धकारमें भी सौभाग्यकी एक ज्योतिर्मयी रेखा चमक उठी और चन्द्रकान्तके वे पितृव्य, जो बीस वर्ष पहले इस विश्वके मायामय स्वरूपका तिरस्कार करके चिदानन्दमय वैराग्यके आश्रयमें चले गये थे, सहसा बिना सूचनाके घर लौट आये, और उस अनाथ बालककी आंखोंके आंसू अपने गैरिक वसनके अञ्चलसे पोंछकर उन्होंने उसे अपने हृदयसे लगा लिया। और जब चन्द्रकान्त बीस वर्षका हुआ तभी इसे छोड़

कर परमधामको यात्रापर प्रस्थान किया। आंखोंमें आंसु भरकर चन्द्रकान्तने उन वीतराग पितृव्यका अन्तिम संस्कार किया! उन दिनों चन्द्रकान्त मेरे ही साथ बी० ए० में पढ़ता था! उस स्नेहमय आग्रहके समाप्त होते ही चन्द्रकान्तकी शिक्षाकी भी समाप्ति हो गई। जन्मभूमिकी ममता, बन्धु-बान्धवोंका निःस्वार्थ स्नेह, कोई भी उसे बांधकर नहीं रख सका। चार वर्ष तक उसके जीवनका यही क्रम रहा। कभी दस-पांच दिनोंके लिये वह हमलोगोंके पास आ जाता। जिस प्रकार वह बिना सूचना दिये आ जाता था, ठीक उसी प्रकार बिना कहे-सुने अन्तर्हित हो जाता था। पर चौथे वर्षके अवसरपर और पांचवें वर्षके प्रारम्भपर एक अभूतपूर्व घटना घटित हुई, जिसने चन्द्रकान्तकी उच्छृंखल प्रवृत्तिका पूर्णरूपसे नियन्त्रण कर दिया!

चन्द्रकान्त उत्तरीय भारतकी यात्रापर गया था, हिमाचलकी प्रकृति-चित्रित रंगभूमिमें वह आनन्द और उत्साहसे उन्नत होकर गाता फिरता था। एक दिनकी बात है, एक अरुण-रागमयी सन्ध्याकी मङ्गल-मुहूर्तमें वह एक निविड़ वनमें बाहर निकलनेका मार्ग खोज रहा था, खोजते खोजते वह एक परम सुन्दर उपत्यकामें पहुंच गया। वह उपत्यका स्वर्गके छायामय निकुञ्जके समान सौरभमयी थी, पासहीमें कल-कल करती हुई एक शीतल सलिला कल्लोलिनी प्रवाहित हो रही थी। और उस सुरम्य भूमिकी एक ओर गुलाबकी प्रफुल्ल लताओंके बीचमें, कल-कल करती हुई, कल्लोलिनीके पार्श्वप्रान्तमें, उसे एक कुटी दिखाई दी।

वह धीरे-धीरे उस कुटीकी ओर अग्रसर हुआ। कुटीके सामने पहुंचते ही उसने जो दृश्य देखा, जो अभिनव माधुर्य्य देखा, उसे देखकर वह चकित हो गया। उसने देखा कि कुटीके सामने ही, हरित दूर्वादलपर, एक परम शान्त योगीश्वर बैठे हैं और उनके पास ही एक परम सुन्दरी किशोरी खड़ी है। चन्द्रकान्त विस्मय-से विमुग्ध होकर उस अनिंद्य सुन्दरी बालिकाकी ओर देखने लगा। दो-तीन क्षणके उपरान्त उसने आगे बढ़कर योगीश्वरके चरणोंमें प्रणाम किया। योगीश्वरने उसे आशीर्वाद दिया और स्नेहके साथ उसका स्वागत किया। उस रातको चन्द्रकान्त उसी कुटीमें रहा और उसने स्वादिष्ट कन्द-मूल-फलोंका भोजन किया।

प्रभात-प्रकाशके प्रस्फुट होते ही योगीश्वरने चन्द्रकान्तको बुलाया,—उन्होंने कहा—“पुत्र! मैं जानता हूं, तुम ब्राह्मण-कुमार हो। तुम्हारा समस्त वृत्तान्त मुझे अवगत है। तुम्हारी उच्छृं-खलता तथा स्वतंत्र भ्रमणकी बात भी मुझसे छिपी नहीं है। और मैं यह भी जानता हूं कि तुम कल संध्याकी मंगल-मुहूर्तमें मेरी इस स्नेहमयी सुवर्णमालाके श्रीचरणतलमें अपना हृदय समर्पण कर चुके हो।”

सुवर्णमाला भी पास ही खड़ी थी, दोनोंके-चन्द्रकान्त और-सुवर्णमालाके मुखमण्डलोंपर सहसा उस अरुण-राग-मयी लज्जाका विलास विलसित होने लगा, जो आन्तरिक अनुरागकी नव कविताके समान मधुर और ललित होती है। चन्द्रकान्तने कुछ उत्तर नहीं दिया, परन्तु उसके मुखमंडलका प्रत्येक परिमाण

योगीश्वरको बातका समर्थन कर रहा था। योगीश्वरने कहा—"और सुवर्णमाला भी तुम्हारे पांव-पद्ममें अपना हृदय समर्पण कर चुकी है। पर एक बात है—सुवर्णमाला क्षत्रिय-कन्या है। क्या तुम उसे स्वीकार करोगे?"

भूल गया! चन्द्रकान्त भूल गया कि सत्ययुगके उज्ज्वल कालमें ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्पर विवाह-बन्धनमें आबद्ध होते थे, पर कलियुगका समाज ऐसे विवाहको अधर्मका कृत्य मानता है। एक अभिनव आनन्दने उसके हृदयको आलोकित कर दिया, उसे एक अलभ्य रत्न प्राप्त हो रहा था, उसे क्या वह परित्याग कर सकता था? कदापि नहीं। उसने हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्! यह मेरा परम सौभाग्य है। मैं भला इस अलभ्य मणिको अस्वीकार कर सकता हूं।"

योगीश्वरने कहा—"अच्छी बात है। तब आजसे तुम सुवर्णमालाके और सुवर्णमाला तुम्हारी हुई। मैंने बड़े स्नेहसे इसे पाला है, पर अब मैं हिमालयके सर्वोच्च शिखरपर ब्रह्म-चिन्तनके लिये जाना चाहता हूं। तुम्हारे हाथोंमें इसे सौंपकर मैं निश्चिन्त हो गया हूं।"

योगीश्वर दो-तीन क्षणके लिये शान्त हो गये। उनके उज्ज्वल-नेत्रोंमें दो बुन्द आंसू झलक उठे। उन्होंने गद्गद् कण्ठसे कहा—"सुवर्णमाले! जाओ! स्मरण रखना, पतिका पाद-पद्म ही रमणीका अन्तिम आश्रय है।"

इतना कहकर उन्होंने सुवर्णमालाको हृदयसे लगा लिया।

उसी दिन योगीश्वर हिमाचलके सर्वोच्च तुषारावृत शिखरपर तपस्या करनेके लिये चले गये और चन्द्रकान्त सुवर्णमालाके साथ अपनी जन्मभूमिकी ओर चल दिया। यहां इतना कह दूं कि यह कथा चन्द्रकान्त हीने मुझसे कही थी और उसके महाप्रस्थानके उपरान्त एक दिन सुवर्णमालाने भी उसकी पुनरावृत्ति की थी।

दूर हो गई उच्छृङ्खल आकांक्षा ! सुवर्णमालाको लेकर चन्द्रकान्त पूर्ण गृहस्थी बन गया, पर उस गृहस्थाश्रममें प्रेम और सौन्दर्य्यकी सरस कविताका संगीत सदा परिव्याप्त रहता था और चन्द्रकान्त और सुवर्णमाला--दोनों एक दूसरेपर बलि-बलि जाते थे। वह सुवर्ण-संसार कविके कल्पना-कुञ्जसे भी अधिक सुन्दर, मधुर, एवं सुरभित था ! और दुर्भाग्यके दारुण प्रहारने, मृत्युकी विभीषिकामयी रक्तलिप्साने, उस सुवर्णसंसारको स्मशानमें परिणित कर दिया था।

धधकती हुई चिताकी ज्वालासे आलोकित भस्मावशेष शवकी धूलिसे धूसरित एवं पिशाच-पुञ्जके विकट अट्टहाससे प्रकम्पित स्मशान भूमि ही संसारके मायामय अभिनयका अन्तिम दृश्यपट है।

(४)

मेरे बहुत कुछ आग्रह करनेपर सुवर्णमाला अपने पतिप्रासादको परित्याग करनेके लिये राजी हुई। उसे अपने घरपर लाकर मैंने सारे घरका भार उसपर छोड़ दिया। मैं उसे निरन्तर

कर्मके अनुष्ठानमें प्रवृत्त करके उसकी वैधव्य-व्यथाको यथाशक्ति शान्त करना चाहता था।

यहांपर एक बात कहना आवश्यक है। पाठक-पाठिकाओंने यह जान ही लिया होगा, कि मेरा स्वर्गीय मित्र चन्द्रकान्त ब्रह्म-कुलका अलङ्कार था। जिस दिन वह सुवर्णमालाको लेकर अपने पैतृक गृहको लौटा, उसी दिन समस्त समाजमें हलचल मच गई। सुवर्णमाला कौन है, कहांकी निवासिनी है, किस जाति-की कन्या है—इत्यादि अनेक प्रकारके प्रश्नोंका निरन्तर आक्रमण चन्द्रकान्तपर होने लगा। पर चन्द्रकान्तने इन सबका यही उत्तर दिया,—"सुवर्णमाला मेरी धर्मपत्नी है।" पर समाज इससे क्यों सन्तुष्ट होने लगा। समाजने चन्द्रकान्तको जातिच्युत कर दिया, पर चन्द्रकान्तने इसकी क्षणमात्र चिन्ता नहीं की। सुव-र्णमालाके स्वरूपमें मानों उसे दिव्य निधि प्राप्त हो गयी थी, और वह उसके लिये समाज तो क्या अखिल ब्रह्माण्डके बहिष्कारको हंसते-हंसते सह सकता था। सारे समाजने चन्द्रकान्तको परि-त्याग कर दिया—पर मैंने—उसके अधम मित्रने—उसके इस पुण्य-व्यापारमें कुछ भी धर्मकी हानि नहीं देखी और मैं बराबर अपने उदार सिद्धान्तोंद्वारा उसे प्रोत्साहन प्रदान करता रहा।

पर अब मेरी बारी थी! अपने उसी जाति-च्युत मित्रकी विधवाको मैंने आश्रय दिया था। और इस भयङ्कर अपराधके कारण समाजकी कोप-दृष्टि मझपर भी पड़ी। समाजके अधि-

वादी युवक मुझसे इस कारण अप्रसन्न थे कि मैंने सुवर्णमालाको आश्रय प्रदान करके उसे गली-गली भीख मांगनेसे रोक लिया, और इस प्रकार उनकी लालसाकी अग्निमें पतित होनेसे उसे बचा लिया। समाजके बहुतेरे सज्जन मेरे धन और प्रभावसे ईर्ष्या रखते थे, और मुझे अपमानित करनेका उन्हें यह सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। मैं भी जातिच्युत कर दिया गया! पर मुझे सन्तोष था और उस सन्तोषके अन्तरालमें आत्मिक आनन्दकी धाराका शीतल प्रवाह प्रवाहित हो रहा था। इसीलिये मैंने इसकी रत्तीभर भी चिन्ता न की। एकाध बार अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंमें आंसू भर सुवर्णमालाने मुझसे कहा भी—"आप क्यों इतना कष्ट उठाते हैं? जाने दीजिये! मैं चली जाऊंगी! यदि देखूंगी कि शैतान मेरे सर्वनाशपर ही उतारू है, तो भगवती मन्दाकिनीकी गोद तो मेरे लिये उन्मुक्त है।" पर मैंने उसे इस प्रकार प्रबोध दिया—"तुम मेरे हृदयकी सजीव स्मृति हो! तुम्हें वह अपनी महायात्रापर जाते समय मेरे हाथोंमें सौंप गये हैं। तब चाहे कुछ हो, समाज तो क्या निखिल ब्रह्माण्ड मेरे विरुद्ध हो जाय, पर तोभी मैं तुम्हें इस मत्सरमय विश्वके भयङ्कर पाप-प्रलोभनोंमें पड़नेसे बचाता रहूंगा। इस जाति-बहिष्कारकी मैं रत्तीभर चिन्ता नहीं करता हूं। तुम्हारे पतिने भी तो नहीं नहीं की थी।"

पर समाजके सभ्योंको इतनेपर भी चैन नहीं था। वे हम दोनोंको बदनाम करने लगे, मैं जिधर जाता, उधर ही मुझपर

व्यंग्य-वाणोंकी वर्षा की जाती। अन्तमें मैंने यही निश्चय किया कि मैं वह स्थान ही छोड़ दूंगा। सुवर्णमालासे सम्मति लेकर मैंने वहांकी समस्त जायदाद बेच दी और एक दिन उस अत्याचारी समाजके सभ्योंको घृणाकी दृष्टिसे देखकर मैंने वह स्थान सदाके लिये परित्याग कर दिया। उत्तर भारतके एक प्रकृति-चित्रित गांवमें जाकर हम दोनों रहने लगे। गृहस्थीका सारा भार था सुवर्णमालाके :हाथोंमें और मैं उस ओरसे एकान्त निश्चिन्त था।

* * *

* * * *

श्मशानमें प्रज्वलित चिताके परिपार्श्व-देशमें हम जिस घोर व्यथाका अनुभव करते हैं, वह सदा उतने ही उग्ररूपमें हमारे हृदयोंमें निवास नहीं करती है। समयमें बड़ी शक्ति है, वह एक अद्भुत वैद्य है, जो विस्मृतिके हरिचन्दन-प्रलेपसे वेदनाको निरन्तर प्रशमित करता रहता है। परिणाम यह होता है कि कभी-कभी तो वह मूर्ति, जिसके मृतदेहके पार्श्वदेशमें स्थित होकर हमने आत्म-हत्याकी चेष्टा की थी, जिसे चितामें रखनेके साथ ही हमने भी चितामें कूदकर भस्म होनेका उपक्रम किया था, जिसके वियोगमें हमें विश्व नरकालयके समान प्रतीत होता था और प्रकृतिका सौन्दर्य्य हमारे हृदयकी यातनाको बढ़ानेवाला मालूम होता था, एक बार ही हमारे हृत्पटसे दूर हो जाती है।

धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा, एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष

होते-होते पांच वर्ष व्यतीत हो गये और छठे वर्षका मञ्जुल प्रभात उदय हो गया। मेरे देखते-देखते ही सुवर्णमालाका वह भयङ्कर विषाद अन्तर्हित हो गया। जब चन्द्रकान्तका देहान्त हुआ था, उस समय सुवर्णमालाकी जो व्यथा-व्यथित दशा थी, उसका अब कहीं पता भी नहीं था। जो मुख पहिले रात-दिन अश्रुधारासे सिक्त रहता और जिसपर विषादकी घन-घोर घटायें छाई रहती थीं, वह अब फिर शारदीय चन्द्रमाके समान प्रफुल्लित हो उठा था। सुवर्णमाला अब कभी-कभी हंस भी देती थी; कभी-कभी उसके विशाल कमल-नयनोंमें आनन्दकी ज्योति भी चमक उठती थी! वह फिर समुज्ज्वल-सौन्दर्य्यकी प्रतिमा-सी प्रतीत होने लगी थी।

चन्द्रकान्त मुझसे एकाध वर्ष बड़ा था, इसलिये सुवर्णमालाको मैं भावज कहकर पुकारा करता था। सुवर्णमालाको मैंने पढ़ाना भी प्रारम्भ कर दिया था और कुशाग्र बुद्धिकी रमणी होनेके कारण शीघ्र ही संस्कृत-साहित्यमें उसकी गति हो गई थी। एक नहीं, अनेक बार, मैंने शारदीय यामिनीके द्वितीय प्रहरमें घरसे सटे उस बागमें बिहार करते-करते दूरपर, किसी निकुञ्जके तोरण द्वारपर बैठी हुई सुवर्णमालाके मुखसे मेघदूत और अभिज्ञान शाकुन्तलके श्लोककी रागमयी आवृत्ति सुनी थी।

कारण तो मैं बता नहीं सकता, पर यह निर्विवाद है कि ज्यों-ज्यों सुवर्णमालाकी तीव्र यातना कम होती जाती थी, त्यों-त्यों मुझे एक प्रकारका परम सुख प्राप्त होता जाता था।

और इसीलिये इन पांच वर्षोंमें मैंने उसके विषादको दूर करनेकी यथासाध्य चेष्टा की थी। सुवर्णमाला भी मेरे इस उद्देश्यसे अनभिज्ञ नहीं थी। इसीलिये एक नहीं अनेक वार मैंने उसके सस्मित स्वागतमें कृतज्ञताकी झलक देखी थी।

(५)

एक बात मैं ऊपर कहना भूल गया। सुवर्णमाला वीणा बजाना जानती थी, और छोटे-मोटे गाने भी गा लेती थी। पर भगवतीने उसे विलक्षण कण्ठ दिया था! इतना मधुर और इतना स्वच्छ! जब वह गाती थी तब ऐसा प्रतीत होता था, मानों ब्राह्ममुहूर्तके मङ्गल-समय कोई देवकिशोरी गा रही हो। न तो मैं उससे सङ्कोचवश आग्रह ही करता था और न वह स्वयं ही मेरे सामने कभी गाती थी, पर प्रभातके पुण्यमुहूर्तमें अथवा यामिनीकी शीतल शान्तिमें वह घरके साथ सटे हुए उपवनके किसी निभृत निकुञ्जमें बैठकर अपनी वीणाके स्वरमें स्वर मिलाकर कभी-कभी गाया करती थी। मैं कभी-कभी जागकर उस अमृत-धाराके समान संगीतको सुना करता था।

एक दिनकी बात है, जब मैं अपने बंगलेकी खुली हुई छतपर सो रहा था, और उसी निद्रितावस्थामें वह सरस संगीतधारा मेरे कर्ण-कुहरोंमें प्रविष्ट हुई, मैं सहसा जाग गया और उसे तन्मय होकर सुनने लगा। दूरपर, किसी कुसुमित कुञ्जके द्वारपर बैठकर सुवर्णमाला बड़े करुण स्वरमें गा रही थी!

नहीं है जीवनकी कछु आस ।

यौवन-वनकी फुलवारीमें, रुचिर रचायो रास ।

सजि सब साज आजु मोहन सँग, करहिं प्रेम परिहास ॥

मधुर अधर चुम्बन परिरम्भण, रचि रस रङ्ग विलास ।

जीवनकी सब साध मिटावहिं, कलका का विश्वास ॥

कैसा मधुर गीत था और ऐसा प्रतीत होता था, मानों उस संगीतकी धारासे समस्त उपवन प्लावित हो रहा था । कई बार मैंने सुवर्णमालाके गानको सुना था—पर उस रात्रिको, उस चन्द्रिका-चर्चित चैत्रयामिनीमें, मैंने जो गान सुना था, वह अपूर्व था ! वह मानों अरुण-राग-मयी वारुणीकी कलकलमयी धारा थी ! उसने मुझे मदमय बना दिया । मैं सहसा अपने विस्तरसे उठकर उधरहीको चला जिधरसे सुवर्णमालाकी कण्ठ-ध्वनि आ रही थी । कोई स्पष्टरूपसे मेरे हृदयमें कह रहा था, कि मेरा उस समय, उस अर्ध-रात्रिकी नीरव शान्तिमें, सुवर्णमालाके निकट जाना अनुचित है, पर पैर नहीं रुकते थे । मैं वहीं पहुंच गया जहां सुवर्णमाला हरित दूर्वादलपर बैठी हुई, मूर्त्तिमती सौन्दर्य-श्रीकी भांति, तन्मयी होकर वीणा बजा रही थी, और साथ-साथमें अलाप रही थी । मैं उसके बाम-पार्श्वके कुछ समीप जाकर खड़ा हो गया ।

कैसा वह अभिनव लावण्य था ! मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों स्वर्गकी अपूर्व शोभा प्राणमयी होकर गा रही है ; मानों मूर्त्तिमती वसन्तलक्ष्मी वीणा बजा रही है, मानों प्रफुल्ल शोभामयी

चन्द्रिका वहांपर बैठकर सङ्गीतकी धारा प्रवाहित कर रही है। मैं निस्तब्ध, निर्निमेष, निमग्न होकर उस वीणा-धारिणी सुवर्ण-मालाको देखने लगा!

लगभग छ-सात मिनटतक मैं इसी भांति खड़ा रहा, सुवर्ण-माला भी तन्मयी होकर वीण बजाती रही। न उसे अपनी सुधि थी, न मुझे अपनी। वह संगीतकी धारामें निमग्न थी और मैं? मैं प्रेमकी प्रबल स्रोतस्विनीमें डूबा हुआ था।

एक बार सुवर्णमालाकी दृष्टि मेरी दृष्टिसे मिल गई। क्षणभरके लिये हम दोनों निर्मिमेष और निस्तब्ध हो गये, पर दूसरे ही क्षण सुवर्णमाला उठ खड़ी हुई। अपने अस्तव्यस्त वस्त्रोंको उसने ठीक करना प्रारम्भ कर दिया पर एक बात मैंने देखी—देखकर मुझे परम सन्तोष हुआ, मैंने देखा कि सुवर्णमालाके नयन क्रोधसे उद्दीप्त, कपोल रोषसे रक्त, और अधर प्रकोपसे प्रकम्पित नहीं हो रहे हैं। मेरे इस प्रकार सहसा आ जानेसे उसके मुखमण्डलपर लज्जाको छोड़ कर दूसरा विचार नहीं उत्पन्न हुआ। मैंने साहस करके कहा—"भाभी! इस प्रकार मेरे आ जानेसे तुम अप्रसन्न तो नहीं हो गई?"

सुवर्णमालाने कुछ विरक्तिके स्वरमें कहा—"तुम यहां आये ही क्यों?"

मैंने विनय-विनम्र स्वरमें कहा-"नितान्त विवश होकर, तुम्हारे गानेको सुनकर मैं विचलित हो उठा! शय्यापरसे जैसे कोई अज्ञात प्रबल शक्ति मुझे यहां खींच लाई! जगदीश्वरी साक्षी है, मैं इस समय विवेकशून्य हो गया हूं।"

अबकी बार सुवर्णमालाने मेरे मुखकी ओर आंखें उठाकर देखा—मैंने भी देखा। पर सुवर्णमालाकी दृष्टिमें किसी प्रकारका रोषमय विकार नहीं था, मेरे उत्तरको सुनकर उसके हृदयमें एक प्रकारकी वैसी उल्लास-ज्योति प्रादुर्भूत हुई थी जैसी किसी विजयीके लोचनोंमें उस समय प्रस्फुट होती है, जब उसका बन्दी उसकी प्रबल शक्तिको सादर स्वीकार कर लेता है। उसने कहा-"पर मैं तो यह नहीं जानती थी कि मेरा संगीत तुम्हारा आकर्षण-मन्त्र बन जायगा।"

अब क्या कहूं? कहनेको तो बहुत कुछ था, पर इस समय मेरा हृदय और मेरा मस्तिष्क अनेक प्रकारके भावों और विचारोंका केन्द्र बना हुआ था। मेरे सामने एक अपरूप लावण्यमयी सुन्दरी खड़ी है और मैं उसके श्रीचरणोंमें अपना हृदय समर्पण कर चुका हूं। मैं मूक बनकर, निर्निमेष दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगा। मैंने उसके व्यंग्यका कोई उत्तर नहीं दिया।

मेरी इस मुद्राको देखकर उसके अधरपर चञ्चल हास्य रेखाका प्रादुर्भाव हुआ। उसने कहा—"क्या बात है विश्वेश्वर बाबू! आज तो तुम्हारी दशा कुछ और ही प्रकारकी हो रही है।"

मैंने अबकी बार बड़ी करुण दृष्टिसे उसकी ओर देखा—मानों मैं मुखसे न कहकर अपने लोचनोंके द्वारा ही अपने हृदयके भावोंको परिव्यक्त कर देना चाहता था। उसने भी मेरी ओर देखा—पर उसकी आंखोंमें आनन्दमयी कुटिलता, अधरपर चारुहास्य-रेखा और मुखमण्डलपर ललित लज्जाकी अरुणिमा थी!

अबकी बार भी मैंने उसकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया ! उसने सरल हास्यके साथ कहा,—"क्या आप गूंगे हो गये हैं ?"

अबकी बार चुप रहना मैंने अनुचित समझा, मैंने कहा—"जो कुछ मैं कहना चाहता हूं उसे कहनेका साहस मुझमें नहीं है। तब गूंगा बना रहना ही उसकी सर्वश्रेष्ठ औषधि है।"

सहसा सुवर्णमालाका मुख विषण्ण हो गया। मैंने देखा कि उसका मुख मलिन हो गया है। मुझे अपनी मूर्खतापर दुःख हुआ, पर दूसरे ही क्षण वह विषादमयी मलिनता किसी आनन्द-मयी अरुणिमामें विलीन हो गई। म्लेच्छनिर्मुक्त सुधाकरकी भांति वह फिर हास्यमुखी हो गई। उसने कहा—"कहिये न, बिना कहे मैं आपका अभिप्राय कैसे समझूंगी ?"

मैंने कहा—"पर आप अप्रसन्न तो नहीं होंगी ?"

उसने कहा—"नहीं ?"

मैं—"सच !"

सुवर्ण—"सच ! भगवती साक्षी है।"

मैंने देखा उसके मुखपर एक प्रकारकी विशिष्ट आनन्दमयी ज्योति छिटक रही है और वह ज्योति मानों मेरे प्रेम-प्रस्तावका अनुमोदन कर रही है। प्रश्न करनेमें पहिले ही उसका उत्तर मैंने उसकी आंखोंमें अङ्कित देखा, विनय करनेसे पहिले ही इष्टवस्तु-प्रदानका भाव मैंने उसकी हास्यरेखामें निहित देखा। मैंने साहस करके कहा—"मैं तुम्हें प्रेम करता हूं और चाहता हूं कि तुम मेरे हृदय-राज्यकी अधीश्वरी बनकर मेरे इस जीवनको सार्थक करो।"

सुवर्णमालाका मुख-मण्डल बाल-सूर्य्यके समान अरुण हो उठा, पर वह अरुणिमा रोषकी नहीं, आनन्द-जनित लज्जाकी थी। वह अरुणिमा मानों मेरी विनम्र प्रार्थनाको मूल स्वीकृति थी। पर उसी समय, हमारे उस आनन्द और उल्लासके मङ्गल-मुहूर्तमें, बिना कारण ही, थोड़ी दूरपर खड़ा हुआ आम्रवृक्ष जोरसे हिल उठा, मानों किसीने उसे पकड़कर झकझोर डाला हो। हम दोनों उस ओर देखने लगे—पर फिर वहांपर शान्ति छा गई! अपने आनन्द-मदमें इस तुच्छ बाधाकी बात हम स्मरण नहीं रख सके।

हां, मैंने आगे बढ़कर सुवर्णमालाका हाथ अपने हाथमें ले लिया! मेरे सारे शरीरमें एक बिजलीसी प्रवाहित हो गई, और उसके कोमल-कान्त कलेवरके भी हर्ष-प्रकम्पने यह स्पष्ट कर दिया कि उसका हृदय भी उल्लसित हो उठा है। क्षणभर मैं उसकी ओर देखता रहा। उस समय चन्द्रमा खिल-खिलकर हंस रहा था और उसकी अमृतधारामें आज मदका भी अंश मिश्रित था। और उससे भी अधिक सुन्दर, उस हंसते हुए पुण्डरीकसे भी अधिक मधुर, सुवर्णमालाका मुख-मण्डल मेरे सामने दिव्य आनन्दसे प्रफुल्ल होकर हंस रहा था और सुवर्णमालाके विशाल लोचनोंसे प्रवाहित हो रही थी अरुण-रागमयी वारुणीकी कल-कलमयी धारा! हम दोनों आनन्द और अनुरागकी सम्मिलित धारामें आकण्ठ निमग्न थे।

मैंने धीरे-धीरे सुवर्णमालाको अपनी ओर खींचा। जैसे कोई

स्वतः ही खिंच आता है, ठीक उसी प्रकार सुवर्णमाला बिना बाधा दिये, बिना एक बार भी 'न' किये मेरी ओर खिंच आई। आनन्द और मदके आवेशमें मैंने उसे हृदयपर धारण कर लिया, उसके गुलाब-कोमल अधरपर मैंने अपना अधर रख दिया !

पर यह आनन्द क्षण-स्थायी था, एक या दो मिनट ही हमने परम आनन्दकी अनभूति कर पायी थी कि सहसा सुवर्णमाला भय-भीत होकर चिल्ला उठी—"छोड़ो ! छोड़ो ! वह देखो ! वे खड़े हैं ! वे खड़े हैं !"

सहसा वह मेरे आलिङ्गन-पार्श्वसे निकल गई। मैं भी चकित होकर चारों ओर देखने लगा। मैंने देखा, सुवर्णमाला भयभीत हरिणीके समान कांप रही है, उसके मुख-मण्डलपर आनन्दकी अरुणिमाके स्थानपर भय और त्रासका पीलापन छा गया। मैंने विकल भावमें पूछा—"कौन है ? कौन है ?"

उसने मूर्च्छित होते होते कहा-"तुम्हारे मित्र ! वे...वे...... क्षमा—"

इतना कहकर वह मेरे पार्श्वप्रान्तमें मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। मैं चारों ओर देखने लगा, पर मुझे कोई नहीं दिखाई पड़ा। हां, उसी समय फिर एक वार बड़े वेगसे, पहिलेसे कई गुणा अधिक वेगसे, वही आम्रवृक्ष हिलने लगा, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ; मानों कोई उसे जड़से उखाड़नेका प्रयास कर रहा है। पर एक-दो मिनटके उपरान्त वह शान्त हो गया !

मैंने देखा, सुवर्णमाला मेरे पैरोंके पास अचेत पड़ी है। इस घटनाने मेरे हृदय और मस्तिष्कको ऐसा उद्भ्रान्त बना दिया कि मैं कुछ सोच ही न सका, कि वास्तवमें बात क्या है! मूर्च्छिता सुवर्णमालाको अपने हाथोंपर मैंने उठा लिया—ले जाकर उसे पलङ्गपर लिटा दिया। पहिले तो मैंने स्वयं ही उपचार किये, पर जब उससे वह चेतमें न आई, तब तो मैं बहुत घबड़ाया! उसी समय दो कोसपर रहनेवाले डाक्टरको बुलानेके लिये मैंने जानेका विचार स्थिर किया। दासियोंको जगाया और सुवर्णमालाकी परिचर्य्याका भार उनपर सौंपकर मैं गाड़ीपर सवार होकर डाक्टरकी खोजमें चला।

आनन्द और आशा—इन दोनोंका समुज्ज्वल विलास सौदामिनीके हास्यसे भी क्षणभङ्गुर है; निमेष-स्थायी है।

(६)

जिस समय डाक्टरको लेकर मैं लौटा, उस समय अरुणोदय हो चुका था। डाक्टरने जिस समय मेरे साथ सुवर्णमालाके कमरेमें प्रवेश किया, उस समय भी वह मूर्च्छित थी। इतना ही नहीं, उसे उस समय तीव्र ज्वर चढ़ा हुआ था। डाक्टरने थर्मामीटर लगाकर देखा तो ज्वर १०४ डिगरीपर था। डाक्टरने भलीभांति परीक्षा करके कहा कि रोगिणीके हृदयको सहसा कोई भयङ्कर आघात लगा है और उसीके कारण उसे मूर्च्छा आ गई है। सायंकालको फिर आनेका वचन देकर वह अपने घरको पधारे।

"क्या चन्द्रकान्तने हमारे इस प्रणय-व्यापारको उस दिन देखा था? क्या चन्द्रकान्त वहांपर अपने सूक्ष्म शरीरमें स्थित था और क्या उसने सुवर्णमालाकी ओर रोष-प्रदीप्त नयनोंसे देखा था? आम्र-वृक्षका सहसा सवेग प्रकम्पन क्या सूक्ष्म शरीरधारी चन्द्र-कान्तके प्रचण्ड प्रकोपका निदर्शन था? तब क्या चन्द्रकान्त सदा सुवर्णमालाके पास रहता है? क्या मृत्युके उस तटपर पहुंचकर भी चन्द्रकान्तका सुवर्णमालापर वैसा ही अक्षय-अमिट अनुराग बना हुआ है?" इत्यादि विचारोंने मेरे मस्तिष्कमें तुमुल आन्दोलन मचा दिया था! और इन्हीं विचारोंके बीचमें, चन्द्र-कान्तके मरण-कालकी स्मृति जागृत हो उठी थी। उससे मेरी जो बातें हुई थीं, उसके साथ आत्माकी अविनश्वरता एवं प्रेम-स्मृतिकी अमरताके विषयमें जो मेरा संभाषण हुआ था, वह सब स्पष्टरूपसे मेरे हृदयमें अंकुरित होने लगा। चिन्ता और विषादके प्रबल स्रोतमें प्रवाहित होता हुआ मैं सुवर्णमालाके कमरेके द्वारपर पहुंच गया!

दरवाजेका एक किवाड़ तो पूरा बन्द था, पर दूसरा आधा खुला था। उस खुले हुए किवाड़के बीचसे कमरेके भीतरके समस्त पदार्थ भलीभांति दिखाई पड़ते थे! एक बार यही देखनेके लिये कि सुवर्णमाला उसी भांति मूर्च्छित है वा जागृत, मैंने उस खुले हुए किवाड़के बीचसे अन्दरकी ओर झांका। पर उस समय जो दृश्य मैंने देखा, उसे देखकर मैं सहसा हतबुद्धि हो गया! आत्म-प्रशंसाके लिये मैं यह नहीं कहता हूं, वरन यह

यथार्थ है कि उस भयङ्कर दृश्यको देखकर बड़े-बड़े वीर पुरुष भी एक बार कांप उठते। मैंने देखा कि सुवर्णमालाकी शय्याके पास पड़ी हुई कुर्सीपर श्वेत वस्त्र परिधान किये हुए मेरा अनन्य सुहृद् मृत चन्द्रकान्त बैठा हुआ निर्निमेष दृष्टिसे सुवर्णमालाकी ओर देख रहा है। इतना ही नहीं, सुवर्णमाला भी बड़ी अनुराग-भरी दृष्टिसे उसकी ओर देख रही है। उसका एक हाथ चन्द्र-कान्तके हाथमें है और उसका समस्त मुख-मण्डल एक अभिनव आनन्द-आभासे, शारदीय चन्द्रमाकी भांति, समुद्भासित हो रहा है। उसके विशाल लोचनोंमें प्रेम और उत्साहकी अरुणिमा छाई हुई है, उसके अधरोंपर मन्द-मन्द मुस्कान लीला कर रही है। यह दृश्य कितना भयङ्कर, किन्तु कितना सुन्दर था! सुवर्णमाला-का ऐसा चारु सौन्दर्य्य मैंने आजतक नहीं देखा था! उस सौन्दर्य्यके अमृतसरसे अपनी दृष्टिके द्वारा, चन्द्रकान्त मन भरके अमृत पी रहा था! लौकिक और आध्यात्मिक मिलनका यह आश्चर्य्यमय समारोह था! मैं स्तम्भित हो गया, मैं भी निर्निमेष दृष्टिसे उस दृश्यको देखने लगा! मैं देख रहा था कि सुवर्ण-मालाके होंठ हिल रहे हैं, पर उसकी ध्वनि मेरे कानोंतक नहीं पहुंचती थी। इसी भांति मैं देखता था कि चन्द्रकान्त भी कुछ कह रहा है, पर उसकी आवाज भी मैं नहीं सुन पाता था! और इससे भी बढ़कर यह कैसा आश्चर्य्य था, कि पास ही, शय्याके पाद-प्रान्तकी ओर भगवतिया गम्भीर निद्रामें निमग्न थी, यद्यपि अभी यामिनीका प्रथम प्रहर भी व्यतीत नहीं हुआ था। यह भी क्या पिशाच-लीला थी?

लगभग १५ मिनटतक मैं इस दृश्यको देखता रहा ! मैं अपने स्थानपर जड़-भावमें खड़ा था; मानों मेरी समस्त शक्ति अन्तर्हित हो गई हो ! उसी समय मैंने देखा कि चन्द्रकान्त अपने स्थानसे उठा ! उसने नीचे झुककर बड़े अनुराग और आदरसे सुवर्ण-मालाके अधरका चुम्बन किया। सुवर्णमालाने अपने दोनों हाथ उसके गलेमें डाल दिये। धीरे-धीरे बड़े यत्न और आदरके साथ, अपने आपको उस आलिङ्गन-पाशसे छुड़ाकर, उसने दरवाजेकी ओर मुख मोड़ा ! मैंने चाहा भी कि मैं वहांसे भाग जाऊं, पर मैं वहांसे हट ही नहीं सका।

वह आया,—द्वारके पास मुझे खड़ा देखकर ठिठक गया। उसके नयन रोषसे प्रदीप्त हो उठे, उसका अङ्ग कांपने लगा, और उसी समय क्षणभरके भीतर ही वह शुभ्र वस्त्र-धारी चन्द्रकान्त मांस-शून्य कंकालमें परिणत हो गया। मैं भयभीत होकर उसकी ओर देखने लगा, मेरे सामने एक नरकंकाल खड़ा था, केवल उसकी आंखोंके गड्ढोंमेंसे स्फुलिङ्ग-राशि विकीर्ण हो रही थी। उसने जब अपने अस्थिशेष हाथको ऊपर उठाया, तब मैं भयसे चिल्ला उठा ! उसने अपनी अंगुली मेरी ओर उठाकर कहा—"विश्वासघाती !" और एक विकट अट्टहासके साथ वह वहांसे अन्तर्हित हो गया, और उसके अन्तर्हित होनेके साथ-ही-साथ मेरी सत्ता भी विलुप्त हो गई। मैं मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा।

दूसरे दिन जिस समय मेरी आंखें खुलीं, उस समय मैं अपने कमरेमें अपनी खाटपर पड़ा था और प्रभात-सूर्य्यकी किरण-राशि मेरी आंखोंका चुम्बन कर रही थी। मैं सहसा उठ बैठा, गत रात्रिकी स्मृति मेरे मन-मन्दिरमें जागृत हो उठी, पर प्रभात-प्रकाशने मेरे भयको दूर कर दिया। नौकरने बताया कि गत

रात्रिको मैं सुवर्णमालाके द्वारपर मूर्च्छित पाया गया था। सूक्ष्म और स्थूल संसारोंका परस्पर ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह बात उसी दिन ठीक प्रकारसे मैं समझ सका।

उसी समय भगवतियाने आकर कहा—"आपको देवी सुवर्णमालाने बुलाया है।"

मैंने उल्लसित भावसे पूछा—"क्या उनकी मूर्च्छा दूर हो गयी?"

भगवतिया—"हां, अब वे अच्छी हैं। ज्वर भी कम है।"

मैं मन-ही-मन भगवतीको प्रणाम किया। उस मंगल प्रभातके उस मंगल-समाचारने मेरे विक्षिप्त विचारोंके तुमुल आन्दोलनको सहसा कुछ समयके लिये शान्त कर दिया!

शान्ति ही आनन्द और आशाकी मंगलमयी माता है!

(७)

"यह सब क्या पिशाच-लीला थी? क्या वास्तवमें चन्द्रकान्त उस रात्रिको सुवर्णमालासे साक्षात् करने आया था? क्या वास्तवमें उसने भीषण रूप धारण करके मुझे संत्रस्त किया था, और मुझे कठोर-कर्कश कण्ठसे 'विश्वासघाती' कहकर पुकारा था? क्या वह स्वप्न नहीं—सत्य था?" इन्हीं बातोंपर विचार करता हुआ मैं सुवर्णमालाके कमरेकी ओर चला। उस समय बार-बार मेरे हृदयमें कोई अज्ञातवाणी यह कह उठती थी कि मेरे उस पुण्य-व्यापारका परिणाम मंगलमय नहीं होगा। इन्हीं आकुल विचारों और ज्वालामय विकारोंको ताण्डव-लीलासे व्यथित होता हुआ मैं सुवर्णमालाके कमरेके द्वारदेशपर पहुंच गया। उस समय मेरा हृदय वेगपूर्वक धड़क रहा था।

इसी समय भगवतियाकी दृष्टि मुझपर पड़ गई। उसने कहा—"आइये बाबूजी! देवी सुवर्णमाला आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

सुवर्णमालाका नाम मेरे लिये आकर्षण-मन्त्र था! उस आकर्षण-जालको छिन्न-भिन्न करना मेरी सामर्थ्यके बाहर था! और सच पूछिये तो छिन्न-भिन्न करनेकी इच्छा भी नहीं थी! सुवर्णमालाके कहनेसे मैं धधकती हुई अग्नि-ज्वालामें कूद सकता था!

मुझे भीतर प्रवेश करते हुए देखकर भगवतिया शीघ्रतापूर्वक वहांसे चली गयी। मैं कह नहीं सकता कि इसका क्या कारण था। सम्भव है सुवर्णमालाने उसे ऐसी ही आज्ञा दी हो।

मैंने देखा कि शय्याके परिपार्श्व-प्रान्तमें केवल एक कुर्सी पड़ी हुई थी। यह वही कुर्सी थी जिसपर चन्द्रकान्त बैठा हुआ था! क्षणभरतक मैं सोचता रहा कि उसपर बैठूं या न बैठूं, पर दूसरे ही क्षण मेरे मनमें अपनी कायरता और कापुरुषतापर बड़ी ग्लानि हुई। मैं उसी कुर्सीपर बैठ गया। पर पता नहीं, क्यों मेरे हृदयमें उसी समय एक प्रकारकी बेचैनी-सी उत्पन्न हो गई!

सुवर्णमालाने मेरे प्रवेशको विकार-शून्य दृष्टिसे देखा, न उसमें लज्जाकी लालिमा थी, न पुण्यकी प्रोज्ज्वल प्रभा! केवल उदास दृष्टिसे मेरी ओर देखकर उसने मुझे पासवाली कुर्सीपर बैठनेका संकेत किया। मेरी अनुरागमयी आशापर यह पहला वज्रप्रहार था! एक-दो क्षणतक मैं उसके मुखकी ओर देखता रहा। पर उसकी दृष्टि मेरी ओर नहीं थी। मैंने व्यथित स्वरमें पुकारा—"सुवर्णमाले!"

उसने विकार-शून्य वाणीमें उत्तर दिया—"हां!"

मैंने और भी व्यथाभरे स्वरमें कहा—"अब तुम्हारी तबीयत कैसी है?"

अबकी बार उसने मेरी ओर देखा, पर उस दृष्टिमें किसी प्रकारका भाव नहीं था; अभेद्य उदासीनतासे वह आवृत थी।

धीरे-धीरे उसने कहा—"अब विलम्ब नहीं है ! मैं शीघ्र ही जाने-वाली हूं ।"

व्याकुल होकर मैंने पूछा—"कहां ?"

ऊपरकी ओर संकेतसे निर्देश करते हुए उसने कहा—"वहीं, जहां तुम्हारे अनन्य सुहृद गये हैं—उसी सूक्ष्म आध्यात्मिक जगतकी ओर मैं भी आज सायंकालतक प्रस्थान कर जाऊंगी ।"

यह क्या ? सुवर्णमाला क्या कह रही है ? क्या वह मेरा हृदय और मेरा संसार शून्य करके चली जायगी ? और इस व्यंग्यपूर्ण 'अनन्य सुहृद'से उसका क्या अभिप्राय है ? क्या वह भी मुझे 'विश्वासघाती' समझती है ? क्या वह भी मुझसे घृणा करने लगी है ? मेरी आंखोंमें आंसू छलक आये । उसने मेरी यह दशा देखी, पर उसके मुखपर दयाका किञ्चिन्मात्र भी भाव प्रस्फुट नहीं हुआ । कुछ-कुछ विरक्तिभरे स्वरमें उसने कहा–"विश्वेश्वर-बाबू ! इस अश्रुपातकी आवश्यकता नहीं है । मैंने अपनी मृत्युशय्यापर रोनेके लिये आपको कष्ट देकर नहीं बुलाया है । मैं अपनी महा-यात्रापर प्रस्थान करते समय कुछ कहना चाहती हूं, इसीलिये आपको मैंने कष्ट दिया है । पर यदि आप इस प्रकार अश्रु-वर्षा करेंगे, तो मैं कुछ भी निवेदन नहीं करूंगी ।"

आह रे रमणीका निष्ठुर-हृदय ! कैसी विषभरी वचनावली है । मेरे हृदयमें भी ग्लानि उत्पन्न हो गई ! इस प्रकार अपना निरादर देखकर मैंने अपने आंसू पोंछ डाले । मैंने स्थिर-कण्ठ होकर कहा—"अच्छी बात है ! रोनेके लिये तो सारा जीवन पड़ा हुआ है । आप कहिये, आपने मुझे क्यों बुलाया है ।"

उसने बड़ी कठिनतासे अपनी व्यथाकी हाहाकार रोकते हुए कहा—"अपनी पाप-कथाका पूर्ण विवरण सुनानेके लिये ।"

मैंने चकित होकर कहा—"पाप-कथा ?"

उसने तीव्र स्वरमें कहा—"हां, पाप-कथा! सुनिये विश्वेश्वर-बाबू! अब मैं उस लोकको जा रही हूं, जहां मेरे सर्वस्व, मेरे प्रणयेश्वर उपस्थित हैं। मैं वास्तवमें इस योग्य नहीं थी कि उनके चरणोंकी सेवाका पुनः सौभाग्य प्राप्त कर सकती, पर वे बड़े दयामय हैं, सब कुछ जानकर, सब कुछ देखकर भी, उन्होंने मेरी निर्बलताको क्षमा कर दिया है और उन्होंने मुझे अपने लोकको ले चलनेका आज वचन दिया है। उन्हींकी आज्ञासे मैं आपके सामने अपने पापकी सारी कथा कहनेको प्रस्तुत हुई हूं!"

मैंने बीचमें रोककर कहा-"पर पाप तो मैंने किया था! मैंने ही तो पहिले-पहिल आपसे प्रणयकी भिक्षा मांगी थी!"

उसने उपेक्षाकी हंसी हंसकर कहा-"यह आपका भ्रम है। वास्तवमें बात दूसरी ही है। मैं कहती हूं, सुनिये। जिस दिन मैंने अपने प्राणेश्वरके शवको चितामें जलते हुए देखा था, उस दिन मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि इस पापी हृदयमें फिर किसीको क्षणभरके लिये भी स्थान मिलेगा। मैंने उसी दिन प्रतिज्ञा की थी कि मैं उसी देवताकी मानसिक आराधना करते हुए जीवन व्यतीत कर दूंगी; पर मैं वैसा नहीं कर सकी। मैं जानती हूं कि आपने अच्छे ही उद्देश्यसे मुझे लौकिक व्यापारोंके सतत अनुष्ठानमें संलग्न रखनेकी व्यवस्था की थी; आप मेरी वैधव्य-यातनाको कम कर देना चाहते थे। पर परिणाम अत्यन्त भयङ्कर हुआ; विश्वने मुझे अपने इन्द्रजालमें फांस लिया और उसमें फंसकर मैं अपनी मानसिक आराधना और साधनाकी बात धीरे-धीरे भूल गई। मैं निर्विकार भावसे विश्वके व्यापारोंका अनुष्ठान नहीं कर सकी।

यहांपर सुवर्णमाला क्षणभरके लिये रुक गई—उसने पानी मांगा; मैंने पानी दिया। उसे पीकर वह फिर कहने लगी—

"आपने भी मधुर मुस्कान द्वारा मेरा आदर किया। मैंने देखा कि आपने मेरे लिये सब कुछ सहनेका साहस किया—आपने मेरी रक्षाके लिये अपने आपको समाजकी वेदीपर बलि दे दिया। आपने अपनी समस्त सम्पत्ति मेरे चरणोंपर रख दी; आपके अनजानेमें शैतानने मेरे पतनके सारे आयोजन आपके द्वारा एकत्रित करा लिये। धीरे-धीरे लालसा उस वासनाके जगतमें मुझे लेकर विचरण करने-लगी। आपने धीरे-धीरे मेरे हृदयपर अपनी मूर्त्ति स्थापित कर दी और मेरे प्राणेश्वरकी पुण्यमयी प्रतिमा एक अन्धकारमय कोनेमें ढकेल दी गई। जिस दिन पहिले-पहिल वासनाके जगतमें मैंने आपको लालसा-लुब्ध नयनोंसे देखा था, उस दिन मेरे पतिको महायात्रापर प्रस्थान किये हुए ठीक तीन वर्ष व्यतीत हुए थे अर्थात् आजसे दो वर्ष पहिलेकी यह बात है। मैंने कई बार, इसके उपरान्त, आपपर अपना अनुराग प्रकट करनेकी चेष्टा की, पर सहज सङ्कोचने, स्त्री-सुलभ लज्जाने मेरी रक्षा कर ली। मैंने देखा—एक नहीं अनेक बार इस बातका अनुभव किया—कि आपकी दृष्टिमें भी मेरे प्रति लालसाकी लालिमा प्रादुर्भूत हुई, पर सङ्कोच और धर्म-बुद्धिने आपको भी अपने विचारों और विकारोंको प्रकट करनेसे बरबश रोक दिया। धीरे-धीरे दोनों हृदयोंमें अग्नि धायं-धायं करके प्रज्वलित हो गई। अन्दर-ही-अन्दर मैं जलने लगी……"

फिर सुवर्णमाला थोड़ी देरके लिये चुप हो गई—पानी पीकर उसने फिर कहना प्रारम्भ किया—"धीरे-धीरे लालसाकी ऐसी प्रबल अग्नि मेरे हृदयमें प्रदीप्त हो उठी कि मुझे रात-रातभर नींद नहीं आती। निद्राविहीन होकर मैं बागमें इधर-उधर घूमती-फिरती और कभी-कभी उसी निकुञ्जके द्वारपर बैठकर रात्रि-की नीरव शान्तिको अपने आकुल-गानसे भंग कर देती। एक दिन

उस आकुल-गानने आपको आकर्षण कर लिया-आप हतबुद्धि होकर, ज्ञानभ्रष्ट होकर, वहां चले आये और आह! उस चन्द्रिका-चर्चित यामिनीमें, लालसा रूपी वारुणीके प्रबल वेगको न रोक सकनेके कारण मेरा पतन हो गया। मैं पतित हो गई—पर उसी समय—उसी समय जब मैं पतनकी गम्भीरतम अभेद्य अन्धकारमयी कन्दरामें पतित होनेवाली थी, जब मेरा सर्वस्व नष्ट होनेवाला था—उन्होंने मुझे बचा लिया। मैंने देखा कि सामनेवाले आम्रवृक्षसे उतरकर उन्होंने मेरी ओर देखा, उनकी आंखोंसे स्फुलिङ्गराशि निकल रही थी। मैं अचेत होकर गिर पड़ी।"

मैंने बीचमें बाधा देकर पूछा—"वह तुम्हारे विकृत मस्तिष्कका निर्मूल भ्रम तो नहीं था ?"

उसने हंसकर कहा—"नहीं, ध्रुव-सत्य दर्शन था! उसके उपरान्त दूसरे दिन मुझे कुछ-कुछ ज्ञान हुआ, पर मैं ज्वरकी ज्वालासे पीड़ित थी। और उसी ज्वरकी ज्वालामें मैंने मन-ही-मन उनसे क्षमा-याचना की। उन्होंने कहा, "तुम यदि मेरे लोकको चलना चाहती हो, तो तुम्हें इस शरीरका परित्याग करना होगा। तुमसे जो पाप हो गया है उसके प्रायश्चित्तके लिये भी इस कलुषित शरीरका विसर्जन अनिवार्य्य है।" मैंने उनकी आज्ञाको शिरोधार्य किया और उन्होंने आज सायंकालको आकर अपने साथ मुझे ले चलनेका वचन दिया है। इसीलिये मैं आपसे विदा मांगती हूं—साथ-ही-साथ आपसे निवेदन करती हूं कि आप लालसाके इस जालको छिन्न-भिन्न करनेका प्रयत्न कीजियेगा।"

उसकी कथाको सुनकर मैं चकित हो गया—पर आकुल वेगके साथ मैंने कहा—"नहीं! नहीं! तुम्हें नहीं जाने दूंगा? किसी भांति नहीं जाने दूंगा......।"

बीचहीमें मेरी बात काटकर उसने कठोर स्वरमें कहा—
"शान्त! तुम मुझे नहीं रोक सकते! मैं अवश्य जाऊंगी...!"

ठीक उसी समय मैने देखा कि सामनेकी उस उन्मुक्त खिड़कीपर वही श्वेतवस्त्रधारी चन्द्रकान्त बैठा हुआ मुस्कुरा रहा है। मैं चीत्कार कर उठा, हृदयके किसी अज्ञात-आवेगमें खिड़कीकी ओर दौड़ा। उस क्षण मैंने देखा कि चन्द्रकान्तका वह लावण्य-ललित कलेवर उसी भयंकर नरकङ्कालमें परिणत हो गया है। अपनी अस्थि-मयी अंगुली मेरी ओर उठाकर, आंखोंमें अग्निस्फुलिङ्गोंकी वर्षा करते हुए उसने कहा-"विश्वासघाती!" और दूसरे ही क्षण उस प्रोज्ज्वल प्रकाशमें वह विलीन हो गया। मैंने पीछे फिरकर देखा— सुवर्णमाला आंख मूंदे पड़ी थी और ऐसा प्रतीत होता था; मानों वह घोर निद्रामें निमग्न है।

ठीक वैसा ही हुआ! गोधूलिके उस पुण्य मुहूर्तमें सुवर्णमाला उसी अक्षय, आलोकमय पतिधामको चली गई।

दूसरे दिन अपने इन्हीं निष्ठुर हाथोंसे मैंने उस शवको चितापर रख दिया! जिस कान्त कलेवरको मैंने एक दिन आदर और अनुरागके साथ हृदयपर धारण किया था, उसीको चितापर रखते समय मैंने भी अपने हृदयको श्मशानमें परिणत कर दिया और आशा और अभिलाषा, आकांक्षा और अनुराग सबोंके मृतशवोंको प्रकाण्ड चितापर प्रस्थापित करके मैंने उसमें आग लगा दी। उन भीषण अग्निशिखाओंके आलोकमें मैं सहसा चीत्कार कर उठा, क्योंकि मैंने देखा कि नदीके उस पार जीवन-सरिताके दूसरे तटपर चन्द्रकान्त और सुवर्णमाला, दोनों खड़े-खड़े मुस्कुरा रहे हैं। पर उस आनन्दमयी मुस्कुराहटके बीचमें मुझ अभागेके लिये करुण अथवा उस सान्त्वनाकी एक क्षीण रेखा भी नहीं थी।
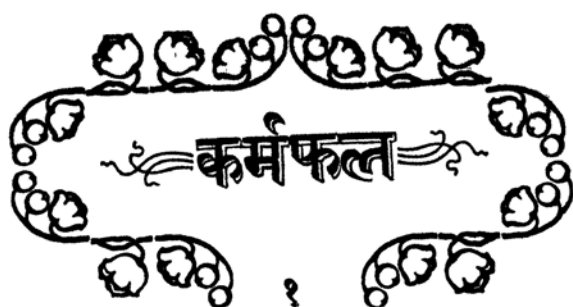
वसन्तपुरमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और अहीर बहुसंख्यामें बसते हैं। वहांके बाबूलोगोंकी बबुआनी रात-दिनके पारस्परिक कलह-से कुछ ही दिनोंमें धूलमें मिल गयी । बाबाजी लोगोंकी हालत मत पूछिये, अब तो ये लोग बेमौत ही कुत्तोंकी मौत मरने लगे, कारण, कोई स्वतन्त्र कार-बार तो करते ही न थे, इनके दाता-यजमान तो बाबू लोग ही थे। जब वे स्वयं ही मुट्ठीभर चनाके लिये तरस रहे थे तो इन्हें पूआ-पूड़ी कहांसे मिलती ! ये पढ़े तो वैसे-ही-तैसे थे। कोई लघुसिद्धान्त कौमुदीका पहला श्लोक—'नत्वां सरस्वती देवीं—' तक पढ़ा था, तो किसीकी विद्वत्ता 'अ-इ-उण—'के सूत्रोंतकमें ही आबद्ध थी। पढ़ते क्यों, खानेको मिल ही जाता था, यजमानके लिये भी काले अक्षर भैंस बराबर ही थे, बाबाजी 'नत्वां सरस्वती...' या 'गजाननं भूत...' आदि दो-एक श्लोकोंसे ही सब काम चला लेते थे। घण्ट भी इसी श्लोकसे बंधवाते, पिण्डा भी यही श्लोक पढ़कर पराते, हवन इत्यादि भी इसीसे करा लेते थे। जहां कोई चतुर यजमान मिल जाता, वहां मुंहमें मंत्र रह जाते थे, केवल 'समर्पयेत्' या 'स्वाहा'-

का अन्तिम शब्द ही गला फाड़कर जबर्दस्ती अपनी कमजोरी छिपानेके लिये मुंहसे निकालते। यदि कोई हठो यजमान गलती पकड़ लेता तो अकड़कर कहते, 'ब्राह्मण'के वाक्यसे ही यजमानकी क्रिया शुद्ध होती है। यदि कोई चलता-पुरजा यजमान मिल जाता तो वह भी झट जवाब देता—"बाबाजी, आप लोगोंके पांव धोनेसे ही यजमानका घर पवित्र होता है तो पत्तल-पूड़ीपर आप लोग इतने लट्टू क्यों हुए रहते हैं?"

ब्राह्मणोंकी यह दुर्दशा थी, बाकी रहे अहीर। वे सोचते—"गांवके बाबू लोग निर्धन ही हो गये तो जिला-जवारके बाबू तो माल-मस्त हैं। दिनमें ये यदि काम नहीं आयेंगे तो रातमें कहां जायेंगे। शरीर जबतक है तबतक रोटीका क्या टोटा है। बाबू लोग यदि रातको जग भी जायंगे तो पकड़ नहीं पायंगे, पकड़ भी पायंगे तो सबूत भी तो चाहिये। थानेदार साहिबका हाथ जबतक पीठपर है तबतक कैसा-हू सङ्गीन मामला ऊपर-ही-ऊपर हवामें काफूर हो जायगा। दही क्या हराममें आता है। लड़कोंका मुंह जाबकर तो दही पहुंचाते हैं। इसी दिन-रातके लिये तो। और क्या वे स्वर्ग पहुंचावेंगे। यदि सजा ही हो जायगी तो मजेमें मोटी-मोटी रोटियां खानेको मिलेंगी। यहीं कौन लड्डू-जलेबी मिलती है।" कहनेका मतलब यह है कि कुलीन ब्राह्मण या क्षत्रियोंकी तरह ये पेटके लिये उतने चिन्तित नहीं। इनके लिये इज्जत नामकी कोई चिड़िया तो इस दुनियामें है ही नहीं। 'भन्नू भाव न जाने पेट भरेसे काम।'

२

ब्राह्मणोंमें दयाराम, दीनानाथ और कृपानाथ मान्य हैं, क्षत्रियोंमें परमानन्द, माधव, दुर्जन और बहादुर। अहीरोंके मेठ बेचू हैं। तीनों ब्राह्मणोंकि परस्पर बनती नहीं थी। परमानन्द और माधव यद्यपि भाई-भाई थे, परन्तु एक दूसरेके जानी दुश्मन थे। दुर्जन और बहादुर मानों पहले जन्मके चूहा-बिल्ली हों। हां, बेचूके तीन दर्जन पोतों और एक दर्जन पुत्रोंमें कभी ठेकती नहीं, एक दांतकी कटी रोटी खानेमें दूसरा आनन्द अनुभव करता था। दयाराम, माधव एक पक्षमें और बेचू समेत सब दूसरे पक्षमें। यद्यपि दूसरे पक्षवालोंमें आन्तरिक प्रेम नहीं था, तथापि एक प्रकृतिके होनेके कारण या यों कहिये कि पापी पेटकी ज्वाला बुझानेके लिये एक साथ सुविधा थी. इसलिये लाचार साथ रहते थे। बहादुर गाने-बजानेमें होशियार था, कृपानाथ गायक तो नहीं था, परन्तु मुंह बनाने, हाथ चमकाने, अश्लील कबीर गा-गा नाचनेमें निपुण था। 'अ-इ-उण' के सूत्र इसे भी याद थे। दुर्जन मुकदमे लड़ने-लड़ाने और बेचू और उसके बच्चे लाठी चलानेमें बड़े सरहङ्ग थे। परमानन्दके द्वारपर मण्डली खा-पीके जुट जाती और चार बजेतक ताश होता। चार बजेसे भांग-बूटी छनती, फिर रातके सात बजेसे झाल, ढोल, डफला ले-ले सब रङ्ग-रलियां करते।

दस बजे रातके बाद इनकी आंखोंमें नयी रोशनी आ जाती। ये अमावस्याकी घनघोर काली रातमें भी उल्लुओंकी तरह बिना

चश्माके ही साफ देख सकते। परमात्माकी ऐसी कृपा न होती तो भला बेचारोंकी भांग-बूटी छनती कैसे! दिनमें कोई खेत तो जोतते-बोते नहीं थे जो गेहूंकी लाल-लाल रोटियां वहींसे मिलतीं, नौकरी करते नहीं थे जो प्रति मासकी पहली तारीखको रुपयेसे जेब भरता। यदि इनसे कोई कहता भी कि भाई काम करो, तो ये साफ कहते,"आप तो काम करते ही हैं, कौनसा मालमस्त बन गये हैं। कौन मिहनत-मुशक्कत करे। नहीं जानते, मलूक बाबाने कहा है—'अजगर करे न चाकरी, पक्षी करे न काम, दास मलूका कह गये, सबके दाता राम। बेचू और शानसे कहता —"विसंभरनाथ विश्वको भरते हैं तो हमीलोगोंका पेट न भरगे।" भला फिर इन विश्वम्भरनाथ और मलूकदासकी वाणीपर कौन अविश्वास करता!

३

कहा है, सुस्ती और शैतान साथ-साथ रहते हैं। वसन्तपुरके बाबू-बबुआनों, ब्राह्मणों और अहीरोंके सिरपर भी २४ घण्टे ही शैतान सवार रहता था, क्योंकि ये लोग भी तो दिनभर मक्खी ही मारते थे। अगर कुछ फुर्सत मिल जाती तो अपने गांव या आसपासके किसी गांवका नक्शा ले लेते और किसी ऐरे-गैरे या भाई-भाईके दो सिर टकरानेका मसविदा तैयार कर लेते। यदि बन पड़ा तो अपना ही उल्लू सीधा करनेकी तदबीर करते। ापसमें लड़ते और दूसरोंको लड़ाते, गांवव ालोंको हैरान-परे शानकर किसीके तरफदार बन अदालत जाते और गरीबोंका

पाकेट कटा अपने पेटके लिये हलुआ-पूड़ीका प्रबन्ध कर लेते। किसीकी मवेशी खुदा-न-ख्वास्ता, छूट जाती तो वह इनकी नजरोंपर चढ़े बिना न रहती। वर्षा होती तो अपने खेतमें बिना जोते ही बीज छींट देते, परन्तु दूसरेके कमाये खेतकी अच्छी फसल देख वनैले सूअरोंकी तरह लूटते-खसोटते। ये गांवके गरीबोंके सामने जंगी लाट, सेठ-साहूकारोंके सामने कुत्ते (चा-पलूसीसे पूंछ डुलानेवाले), पुलिस-इन्सपेक्टरके सामने भिखारी और किसी वकील-मुख्तारके सामने यजमान-सा बन जाते हैं। पढ़ना-लिखना, पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, सभा-समाज, देव-ईश्वरकी तो इन्हें तिलभर परवा नहीं। इनके लिये पुनर्जन्म या ईश्वरीय दण्ड-विधानके सिद्धान्त केवल कपोल-कल्पित ही हैं। शायद ये समझते थे कि गांजा-भांग,चरस-तम्बाकू ढोल-झाल,लाठी-बाना, लूट-खसोट आदि चीजें ही इन्हें वैतरणी पार करा देंगी।

४

आज काली-काली घटाओंसे घिरा आसमान अमावस्याकी अंधियारीको और भी भयङ्कर बना रहा है। रातके दश बजेकी बैठी मण्डली अभीतक अपने कार्यक्रमको ठीक न कर सकी। अमावस्याकी रात थी, भर रात अंधियारी और इन्द्र महाराजकी कृपा थी, इन्हें कोई जल्दी न थी, फिर भी इस अनुकूल अवसरसे विशेष लाभ उठानेके ही अभिप्रायसे इतनी खींचा-तानी हो रही थी। दुर्जनने कहा, भाई! दयारामका कटहल खूब फला है, चलें आज उसीकी सफाई कर दें। आज वह वहां

होगा भी नहीं, उसके घर उसकी भतीजीकी शादी है। प्रतिज्ञा भी पूरी हो जायगी।" किसीने पूछा, 'प्रतिज्ञा कैसी?' दुर्जनने जवाब दिया—"हमलोगोंने प्रतिज्ञा की है कि किसी साल भी एक कटहलतक दयारामके घर न जाने पावे।" बेचूने कहा—"भाई! खाली कटहल-कोवे और शाकभाजीसे कैसे काम चलेगा? सिरामपुरवालोंके खेतमें एकदम बड़ी-बड़ी बालोंवाला गेहूं लगा था, काटकर गल्ला किया गया है, वही नावपर उतार दें। ऐसा सुतार फिर हाथ न लगेगा! होली भी आ ही रही है।" बहादुरके एक लड़केने कहा—"दयारामका बंगला ही न आज जला दें या रामराजकी सरकण्डेकी राशिका ही अन्त कर दें।" बहादुरने कहा—"शिवजीके मन्दिरमें पसेरी-पसेरीभरके चार घड़ियाल (घण्टे), तीन चान्दीकी तश्तरियां और कई ऐसी ही चीजे हैं। सौ रुपयेसे कममें तो हरगिज नहीं बिकेंगी। बकाया लगानकी नालिश तहसीलदार साहब आजकलमें ही भेजनेवाले हैं। सबका काम इसीसे चल जायगा, नहीं तो कुड़क-घुड़कके फेरमें पड़ना पड़ेगा।" यही सलाह सबको जची, यद्यपि बेचूकी दृष्टिसे सिरामपुरवालोंके खेतके गेहूंकी लाल-लाल रोटियां नहीं उतरती थीं, पर कृपानाथ लड़कपनसे ही चटोर थे। यजमानोंके घरकी पूड़ियां खाये बहुत दिन हो गये थे। आज उनके घर शामको भी मनोनुकूल खानेको नहीं मिला था और भूख उन्हें तङ्ग किये हुई थी। अतः उन्होंने बहादुरके उपरोक्त प्रस्तावसे सहमत होते हुए भी पूआ-पूड़ीकी प्राप्तिके निमित्त नया प्रस्ताव

रखा। उन्होंने कहा "आज सिरामपुरके मुखिया सिवालकतिवारी-के लड़केका तिलक आया होगा। १२ बजे रातको ही सुदिन है। उधर जब तिलक पड़ने लगे तब इधर घर खोद सारी खाद्य सामग्री निकाल ली जाय, और खूब ठाटसे लाकर उड़ाया जाय। भले हम सब लोगोंने भङ्ग छक-छक कर पी है।" पेटके भूखे तो सब थे ही, यह प्रस्ताव भी बहादुरको छोड़ और सबको पसन्द आया। परन्तु बहादुरकी बात इससे कटती थी और बकाया लगानका तकाजा उनपर जोरका था, इसीलिये उन्होंने कहा, "यह कौन-सी लाभदायक बात है। पेटके लिये कौन इतनी मुशकत उठावेगा। मैं तो अब चला, जिसको मेरे साथ चलना हो चले।" यह कह बहादुर तमककर उठा, उसके पीछे बेचू चला। दोनों मन्दिरको ओर चले गये। कृपानाथ, दुर्जन और उसके कुछ सङ्गी सिरामपुर चले। ये पूड़ा-पूआके लोभको संवरण नहीं कर सके। आज दो भागोंमें विभक्त हो ये जबर चोर अपना अपनी मनोकामना पूरी करने चले। परन्तु दोनों ही तरफ जानेवालोंके बीच गांवके बाहरके वट-वृक्षके नीचे आनेकी बात ठहरी। बहादुर और बेचू लपके चले जा रहे थे। रास्तेमें कोई भी दिखलायी न पड़ा। दिखायी देता कहांसे, उस अन्धेरी मेघाच्छन्न घोर निशामें उल्लू भी छिपे पड़े थे, निशाचरोंको भी भय लगता होगा। मन्दिरके पास पहुंचकर ओह-पोह ली, कोई भी आसपास सोता न दिखायी दिया। दोनोंने ही दबे पांव

मन्दिरमें प्रवेश किया। बहादुर डील-डौलमें साधारण मनुष्योंसे चार अंगुल अधिक ऊंचा था। जिस रस्सीमें घण्टा बंधा था वह उसके सिरसे लग गयी। घण्टा गरज उठा। आवाज़ भी मामूली नहीं निकली, मानों युद्धका डङ्का हो। बहादुर कुलीन वंशका था और चोरीके काममें चिरअभ्यस्त नहीं था। वह झट मन्दिरसे बाहर भाग निकला। बेचू भी पीछे चला, पर इसमें साहस था। यह चोरोंका चतुर उस्ताद था, इस काममें बड़ा ही अभ्यस्त। इसके मारे आसपासके ही क्यों, जिला-जवारके सब लोग तङ्ग आ गये थे। कोई लक्ष्मीका लाड़ला बच नहीं गया था, जिसके घरकी तलाशी इसने या इसके लड़कोंने न ली हो। इसने बहादुरसे कहा-"बाबूसाहब! ऐसे ही काम होता है! चलिये अभी कुछ भी बिगड़ा नहीं है। कोई चिड़ियेका पूत भी तो नजर नहीं आता। खाली हाथ जानेपर दुर्जन वगैरः क्या कहेंगे?"

यह सुन बहादुर भी लौटा और आकर पहलेपहल घण्टा ही उतारा। फिर झांझ, तश्तरियां, लोटे, घड़ियाल, मूर्तियोंके वदनपरके चान्दीके आभूषण आदि लेकर ये दोनों उसी वट-वृक्षके नीचे आकर ठहरे, जहां ठहरनेका ठहराव हुआ था।

उधर दुर्जन वग़ैरः सिरामपुर गये ही थे, कृपानाथ पहलेहीसे सिबालक तिवारीके द्वारपर पहुंच गये थे। जब तिलकका समय पहुंच गया दरवाजेपरके सब आदमी घरके भीतर चले गये। ऐसे अवसरपर स्त्रियां जरूर उपस्थित रहना चाहती हैं। स्त्रियों-द्वारा मङ्गल-गान होता ही है। इसीलिये ब्राह्मणों और आगत-

अतिथियोंके खाने-पीनेका सारा सामान इस घरकी स्त्रियोंने भी पहलेसे ही तैयार कर रखा था। ज्योंही तिलकका मुहूर्त आया सबकी सब एक जगहपर आ इकट्ठी हुईं। भाण्डारघर बन्दकर घरकी मालिकिनने अपने पास कुञ्जी रख ली। लड़का बैठाया गया, विधिवत् कार्य्य आरम्भ हो गया। कृपानाथने नाईसे कहा, "देखो, दरवाज़ेपर कोई रह न जाय, सबको बुला लाओ।" नाईने उत्तर दिया, "पण्डितजी सब जने तो यहीं हैं।" फिर कृपानाथने मालिकिनसे कहा—"यों चुप-सन्नाटाका कारण क्या है? सब स्त्रियोंको बुलाकर कह दीजिये, झूम-झूमकर झूमर गाव, विवाहमें मङ्गल होना ही चाहिये।"

इधर तो सब इसी तिलकके कामोंमें अस्त-व्यस्त थे, उधर दुर्जन और उसके साथी ताक लगाये हुए थे। अवसर पा भाण्डारघरमें बगली मारी और सारी खाद्यसामग्री निकालकर नौ-दो ग्यारह हुए। ये भी बहादुर-बेचूके पास उसी वट-वृक्षके नीचे पहुंचे।

इधर तिलकके अवसरपर कृपानाथ और अतिथिपक्षके पंडित 'तू-तू, मैं-मैं' कर रहे थे। दोनों ही कुछ जानते तो थे नहीं, थपड़ी और गाल बजानेमें बड़े ही दक्ष थे। संस्कृतसे अनभिज्ञ यजमान लोग उनकी बातोंसे उनको हार-जीतका पता नहीं पा सकते थे। हां, जिसे ज़ोरसे बोलते देखते उसीको विजयी मानते। ऐसे लोगोंका भी वहां अभाव नहीं था जो केवल इन दोनों पंडितोंकी पगड़ीकी छुटाई-बड़ाईसे ही उनकी योग्यताको परख कर रहे थे। कृपानाथ तो हटते ही न थे, इञ्च-इञ्च आगे ही बढ़ते

आते थे, मानों उन्हें पूआ-पूड़ीके मिलनेका निश्चय हो गया हो। अब सारी कार्य्यवाही खतम हुई, रातके बारह बज गये थ। सबको खिलाने-खानेकी जल्दी पड़ी। मालिकने नाईको गांवके भोजनार्थ निमन्त्रित ब्राह्मणों और सरदारोंको बुलानेके लिये हुक्म दिया और मालिकिनने घरकी स्त्रियोंको लोटे-ग्लास ठीक-ठाक कर रखनेके लिये कहा। द्वारपर सब लोग इकट्ठे हुए, इधर मालिकिनने भाण्डारघर खोला। देखते अवाक् रह गयीं, न वहां पूआ-पूड़ीसे भरे थाल थे, न तरकारियोंसे भरे कठरे। छाती पीटती चिल्लाती बाहर आयीं और पतिसे सब कह सुनाया। रातके एक बजा था, बाज़ार बन्द ही था, सामान भी मिलना एकदम असम्भव था, सबका हक्का-बक्का बन्द हो गया। सिबालक तिवारी अपने गांवके मुखिया थे, सब चोरोंको जानते थे, कभी बेचू और भन्नूके नाम ले-ले गाली देते, कभी दुर्जन-बहादुरके, तो कभी दूसरे गांवके चोरोंपर भ्रम करते। परन्तु अब क्या होता, जो होना था सो तो हो ही चुका। सब ब्राह्मण जो शामसे ही, भूखे आसरा लगाये अभीतक जगे समयकी बाट देख रहे थे, सिबालकको गाली और चोरोंको श्राप देने लगे। सिबालकने सबके पांवोंपर एक-एककर पगड़ी पटकी और क्षमा याचना की। कहा—"हे देवगण! आप लोगोंको और अधिक तैयारीके साथ खिलायेंगे, ज़रा सवेरा होने दीजिये। मेरा क्या दोष है? जो हो गया, उसके लिये हमें बड़ा दुःख है। उन चोरोंको क्या करूं। कई बार थानेमें रिपोर्ट की, परन्तु;

शैतान दारोगा चोरोंको शह दिये हुए है। एक ही महीना पहले मेरा बैल और बाबूलालकी भैंस चली गयी। आज हम बेइज़्ज़त हो गये। हे भगवन्! आप निगाह करें।" इसी बीच बिजलीकी कड़ककी आवाज़ हुई। सिबालकने कहा,"हे इन्द्र महाराज! इन ब्राह्मणोंका श्राप चोरोंपर अवश्य पड़े, इनपर वज्रपात कर दो।"

और होता ही क्या, सब ब्राह्मण पेटपर पत्थर बांधे अपने-अपने घर गये। उनमेंसे कितने तो एक दिन पहलेसे ही इसी पूड़ीके आश्रयपर भूखे थे। अतिथिगण भी चादर तान लेट गये। सबोंने करवट बदल-बदल रात काटी।

५

कृपानाथ तो चट वहां पहुंचे जहां दुर्जन, बेचू, बहादुर और दो-एक उनके सङ्गी वट-वृक्षके नीचे बैठे पूआ-पूड़ी और झांझ-घड़ियालका बंटवारा कर रहे थे। कृपानाथ साक्षर थे, खासकर अमावस्याको आसपासके गांवके चोरोंको यही सुदिन दिया करते थे। इनकी बात वे सब ज्यादा मानते थे। ये भूखे थे ही, पहुंचते-पहुंचते कहा, "भाइयो! झगड़ो नहीं। पहले मजेसे खाओ-पीओ। फिर शान्त हो बंटवारा करो।" यही बात सबको जंची और सब पलेथी मार-मारकर बैठे। कृपानाथको ही परोसनेका भार दिया गया। जब पत्तल बिछ गये तो एक-एक करके सामग्री कृपानाथको परोसनेके लिये दुर्जन देने लगा। सबसे पहले पूआ दिया। कृपानाथने कहा—"यह क्या है?" दुर्जनने कहा—आपकी सबसे प्यारी वस्तु है!" कृपानाथ कुछ मुस्कुराये और

सबके आगे सामग्रियोंकी ढेर लगा दी। कुछ कमी तो थी नहीं जो अपने लिये चिन्ता थी। सब मग्न थे। ऐसी सामग्री बहुत दिनोंपर सामने पड़ी थी। मलूक बाबाकी वाणी आज अक्षरशः सत्य सिद्ध हो रही थी। सबोंने पहले कौल तोड़-तोड़ अपने-अपने हाथ मुंहकी ओर बढ़ाये, पर किसीने भगवान या 'विसंभर नाथ' का नामतक भी न लिया। अभी सबके हाथ मुंहतक पहुंचे भी न थे कि यकायक भयानक गर्जनके साथ बिजली गिरी। अब न तो उनमेंसे कोई बचा, न वह पेड़,न खाद्य सामग्री, न लूटका माल। सब मानों पातालपुरी पहुंच गये। वहां एक गहरा तालाब बन गया जिसका पानी खरा है और पीनेके भी योग्य नहीं।

ठीक है,जो जीवनके मर्मको नहीं समझता,जो अमूल्य मानव-जीवन पा इस विश्वकी सेवा नहीं करता, जो परमात्माकी सृष्टि-को अपने योगसे और भी उन्नत नहीं बनाता, जो सत्सङ्गको छोड़कर सदा कुसङ्गमें ही निरत रहता है, जो सुकर्म न कर कुकर्म करता है, जो सदा आलस्यमें रहता और शैतानके चलाये मार्गपर चलता है, जो परायी वस्तुको ग्रहण करनेसे नहीं हिचकिचाता, आसपड़ोसके लोगोंको सुख देनेके बदले दुःख ही देता है, जो सदा दूसरेकी कमाई वस्तुओंपर ही दृष्टि रखता है, देव-ईश्वरपर भी विश्वास नहीं करता, अपनेको देवताओंसे भी चतुर समझता है, दूसरेकी इज्जतको बिगाड़ना चाहता है, पापी पेटको परिश्रम और ईमानदारीसे न भरकर चोरी इत्यादि अकर्म कर्मोंको करके भरता है, जो चौबीसों घण्टे दूसरोंको तबाह करनेको ही सोचता है, अपनेको ही सबसे बुद्धिमान समझता है, अपने भावी जन्मको सुधारनेकी चिन्ता नहीं करता वह देव कोपसे बच नहीं सकता, उसके ऊपर वज्रप्रहार हुए बिना रह नहीं सकता, उसकी दुर्दशा अवश्य होती है, उसे अपने कियेका फल मिलता ही है।

मंत्र-बल

[१]

टन्-टन्-टन्.........

मैं कप्तान टामसनके कमरेमें बैठा उनसे प्रत्नतत्वके सम्बन्धमें बातें कर रहा था, तबतक आवाज़ आयी,—टन्, टन्, टन्। मैं आश्चर्यसे इधर-उधर ताकने लगा। न तो उस कमरेमें कोई घड़ी थी और न कोई घण्टी। फिर यह आवाज़ आयी कहां-से ? दो मिनिटके लिये ये विचार मेरे दिमाग़में आये; पर इनका अस्तित्व देरतक न रहा। मैं शीघ्र ही इसे भूल गया।

इसी समय मेरी दृष्टि कप्तान टामसनके चेहरेपर पड़ी। उनका मुंह फक् पड़ गया, आंखें निकल आयीं, गला बैठ गया, दिल बल्लियों उछलने लगा और शरीर थर-थर कांपने लगा। उनकी यह चेष्टा देखकर मुझे आश्चर्य और भय दोनों ही हुआ। कुछ देर बाद उनकी दशा सुधर गयी। वे पहलेकी तरह गंभीरता-पूर्वक बातचीत करने लगे। मैं यह रहस्य कुछ नहीं समझ सका।

नो०—अंगरेजीके उपन्यास Mistry of the palace के किंचित आधारपर। —मुक्त।

मुझसे रहा न गया। मैंने कप्तान साहबसे इसके बारेमें पूछ ही दिया। पहले तो उन्होंने टालमटोल करना चाहा,पर मेरे बहुत आग्रह करनेपर वे कहने लगे—"आगस्टिन,तुम इसके बारेमें मुझसे कुछ न पूछो। मैं इस बारेमें कुछ न बतानेके लिये बाध्य हूं। यह मेरे जीवनका एक जटिल रहस्य है। इस रहस्यका पर्दा फ़ाश करनेके लिये तुम उतावले न हो। वह समय शीघ्र ही आवेगा, जब इस विषयकी सभी बात तुम लोगोंको मालूम हो जायँगी।

यद्यपि मुझे कप्तानकी इन बातोंसे सन्तोष न हुआ, किन्तु फिर भी मैंने उनकी बात मान ली और फिर उस विषयमें कुछ न पूछा। थोड़ी देरतक अन्य विषयोंपर बातचीत करके मैं अपने घर लौट आया।

दिनके बाद दिन बीतते गये और इस भाँति कई महीने बीत गये। उक्त घटनाको मैं एक तरहसे भूल-सा गया। इसी समय एक दिन सुन पड़ा कि कप्तान टामसन लापता हैं। एक दिन रातको वे घरसे न मालूम कहाँ चले गये। इस विषयमें वे घरवालोंसे भी कुछ न कह गये थे।

उक्त घटनाके दूसरे ही दिन कप्तान साहबका चपरासी मुझे एक चिट्ठी दे गया। चिट्ठी कप्तान साहबके पुत्र ए० जी० फ्रेडरिककी थी। फ्रेडरिक मेरा परम मित्र था। उसने लिखा था—

प्रिय आगस्टिन,

अभिवादन! पिताजी रातसे लापता हैं। हमलोगोंको भी उनके बारेमें कुछ मालूम नहीं है। उनके कमरेमें एक रिवाल्वर

और एक बन्द पैकेट मिला है। पैकेटके ऊपर ही एक चिटपर लिखा है कि न्यायाधीश, धर्माचार्य, प्रि० फ्रेडरिक और मि० आगस्टिनके सामने यह पैकेट खोला जाय। अतः तुम शीघ्र हमारे यहाँ चले आओ। हमलोग तुम्हारी प्रतीक्षामें हैं।

विश्वस्त—ए० जी० फ्रेडरिक।

फ्रेडरिकका पत्र पढ़ते ही मुझे उस दिनकी घटना याद आ गयी। मैंने सोचा, आज शायद वह समय आ गया है, जब कप्तान साहबके उस रहस्यका भेद प्रगट होगा। गाड़ी तैयार करवाकर मैं शीघ्र ही फ्रेडरिकके यहाँ जा पहुँचा।

वहाँ सब लोग पहलेसे ही मौजूद थे। मेरी बाट जोह रहे थे। मेरे पहुचनेपर सबलोग कप्तान साहबके कमरेकी ओर चले। वहाँ हमलोगोंने भी रिवाल्वर और पैकेट देखा। पैकेटपर एक चिट था। उसमें लिखा था—

"मेरे दिन पूरे हो गये। अपना वादा पूरा करने जाता हूं। मेरे इस आकस्मिक अन्तर्धानसे लोगोंके विस्मयकी सीमा न रहेगी, इसीके निवारणके लिये यह पेकेट रक्खे जाता हूँ। इसमें सभी बातें अङ्कित हैं। यह पैकेट, न्यायाधीश, धर्माचार्य, प्रि० फ्रेडरिक और मि० आगस्टिनके सामने खोला जाय। आगस्टिन युवक है। यह रहस्य जाननेकी उसकी प्रबल अभिलाषा है। अतएव वह अवश्य बुला लिया जाय।"

पत्र पढ़नेके बाद सब लोगोंकी सम्मतिसे मैंने पैकेटकी सीलें तोड़ दीं। उसके अन्दरसे एक लम्बा लेख निकला। उसका शीर्षक बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा था—

मेरी आत्मकथा

भारतीय तपस्वीकी ज्योति !

मंत्रका बल !!

मैं बड़े चावसे लेख पढ़ने लगा। सब लोग ध्यान लगाकर सुनने लगे—

[२]

"उस समय मेरी अवस्था बत्तीस वर्षकी थी। एक साधारण सैनिकसे उन्नति करते-करते मैंने कप्तानका पद प्राप्त किया था। मुझसे ऊँचे ओहदेवाले मेरे आफिसर सदा मुक्तकण्ठसे मेरी प्रशंसा किया करते थे। उन दिनों अर्न-शायर प्रदेशमें मेरी वीरताकी बड़ी शोहरत थी।

"इसी समय भारतवर्षके शासनकी बागडोर ईष्टइण्डिया कम्पनीके हाथों आयी। भारतवर्षमें उस समय विद्रोहकी चिनगारी राखकी ढेरमें छिप गयी थी, पर बुझी न थी। काबुलकी ओर अफरीदियोंका बड़ा उपद्रव था। उनके उपद्रवसे उस प्रान्तकी प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। बहुत उपाय करनेपर भी जब भारतीय सेनासे उनका दमन न किया जा सका, तो इङ्गलैण्डसे एक जबरदस्त युरोपियन सेना भारतवर्ष भेजी गयी। मैं भी उस सेनाका अध्यक्ष होकर भारतवर्ष गया।

"भारतवर्ष ! ओह, भारतवर्षकी याद आते ही प्राणोंमें एक अपूर्व गुदगुदी पैदा होती है, शरीर एक अननुभूत आनन्दके आवेशसे कण्टकित हो जाता है और अतीतकी उस मधुमय स्मृतिसे हृदय पुलकित हो जाता है। भारतवर्ष बड़ा ही रमणीय देश है। हमारे यहाँके एक सुन्दर-से-सुन्दर प्रदेशका मुकाबला वहाँका कोई भी साधारण स्थान कर सकता है। भारतवर्ष सुन्दरताकी खान है, प्रकृतिका दुलारा देश है और विविध विद्या-पुष्पोंके द्वारा सजाया हुआ भारतीका सौरभमय सुन्दर सदन है। भारतवर्षके समान भारतवर्ष ही है, उसके लिये संसारमें कोई अन्य उपमा नहीं। संसारका सारा सौन्दर्य, सारी कोमलता और सारे गुण-समूह भारतवर्षपर निछावर किये जा सकते हैं।

"मुझे बचपनसे ही भ्रमणका बड़ा शौक था। अपने इस शौकको इस तरह अनायास पूरा होते देखकर मेरे आनन्दकी सीमा न रही। भारतवर्षके बारेमें मैंने पुस्तकोंमें बहुत कुछ पढ़ा था। वहाँ झटपट पहुँच जानेके लिये मेरा जी तड़फड़ाने लगा। मैं बड़े उत्साह और आनन्दके साथ यात्राकी तैयारी करने लगा।

"एक दिन शुभ मुहूर्तमें भाई-बन्धुओंसे भेंट करके और हृदय-में उल्लास तथा आँखोंमें आँसू भर, जन्मभूमिको प्रणाम करके उससे विदा ली। जन्मभूमिको छोड़ते समय क्षणभरके लिये मेरे हृदयमें दुःख अवश्य हुआ, पर उसका अस्तित्व आनन्दकी आँधीमें अधिक देरतक न रह सका। मैं अपनी सेनाके साथ भारतवर्ष चला गया।

"भारतवर्षकी पावन भूमिमें पैर रखते समय मुंहसे अनायास ही निकल पड़ा—भारतवर्षकी जय हो! मैं नहीं समझता कि ऐसा क्यों हुआ? भारतके प्रति मेरी यह प्रीति, यह श्रद्धा लोगोंकी नज़रमें किस रूपमें परिलक्षित होगी, यह कहना मेरे लिये संभव नहीं है। मैं यह भी नहीं जानता कि एक विदेशीय उच्छृङ्खल युवकके इस प्रेमको भारतवासी किस दृष्टिसे देख सकेंगे, पर मैं इतना जानता हूं कि उसकी भूमिपर पैर रखते समय मेरे हृदयमें एक अपूर्व शान्ति उत्पन्न हुई। मेरे मनमें हुआ मानों यह भूमि मर्त्यवासी मनुष्योंके रहनेकी जगह नहीं, किन्तु अमर लोकवासी देवताओंका निवासस्थान है। बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे भारतभूमिको प्रणाम करके मैंने जहाजका परित्याग किया। इसके बाद ही मुझे भारतवर्षके नाना स्थानोंमें घूमते हुए अपनी सेनाके साथ काबुलकी ओर जाना पड़ा।

[३]

"काबुलमें अफरीदी डाकुओंका बड़ा जोर था। मैं उनकी टुकड़ियोंको परास्त करता हुआ आगे बढ़ता गया। कुछ दिनों बाद मुझे मालूम पड़ा कि वहाँकी पर्वत-श्रेणी और गहन वनके अन्तरालमें अफरीदियोंका एक बड़ा और प्रधान अड्डा है। वहींसे ये लोग जहाँ-तहाँ जाकर उपद्रव मचाया करते हैं। मैंने उस प्रधान अड्डेको ही नष्ट करनेका विचार किया और धीरे-धीरे उसकी ओर अग्रसर हुआ।

"मैंने अपनी सशस्त्र सेनाके साथ पर्वतश्रेणी और वन-समूहके मध्यमें खेमा गड़वा दिया। एक-आध दिन विश्राम करनेके बाद वनमें प्रवेश करनेका मेरा विचार था।

"वह वसन्तकी ऋतु थी। धरणी वासन्ती चोली पहने अपनी छटासे संसारको मोहित कर रही थी। कोयलकी मस्तानी कूकसे सारा वन-प्रान्त मुखरित हो रहा था। उस दिन सिपाही विश्राम कर रहे थे। संध्याके समय अपने घोड़ेपर सवार होकर टहलता-टहलता मैं पहाड़पर चढ़ गया। पर्वतकी एक समतल चोटीपर पहुंचकर मैं एक चट्टानपर बैठ गया। धीरे-धीरे मुझे नींद आने लगी। पासहीके पेड़की एक डालीमें घोड़ेको बांधकर मैं उसी शिलातलपर सो गया।

"थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि एक अपरूप सुन्दरी बड़े वेगसे भागी हुई मेरी ओर चली आ रही है। उसके पीछे दो दुर्वृत्त उसे पकड़नेकी नीयतसे दौड़े चले आ रहे थे। युवतीकी दशा बुरी थी। उसके कोमल पांव दौड़ते-दौड़ते थक गये थे और जङ्गली कांटोंसे छिद जानेके कारण उनमेंसे रक्तकी धारा बह रही थी। युवती मुझे देखकर रक्षाके लिये चिल्लायी। मैं तलवार लेकर उन दुष्टोंपर झपटा। मेरी तलवारसे घायल होकर वे दोनों भाग गये। युवतीकी रक्षा हुई।

"उन दोनोंके भाग जानेपर युवतीने मेरी ओर देखा। उसकी दृष्टिमें कृतज्ञताके आँसू भरे हुए थे। मैंने उससे उसका निवास पूछा; किन्तु उसने जो कुछ बतलाया उसे मैं बिलकुल न समझ

सका। मैंने अनेक भाषाओंका अध्ययन किया था, किन्तु युवतीकी भाषा उन सबोंसे ही भिन्न थी। भाषाकी इस गड़बड़ीके कारण न तो युवती मेरी कोई बात समझ सकी और न मैं ही उसकी कोई बात समझनेमें समर्थ हुआ। इशारेसे मैंने उससे पूछा कि तुम्हारा घर कहाँ है, तुम किधर जाना चाहती हो। युवतीने इशारासे ही उत्तर दिया। मैं उसे उसके घरतक पहुंचा देनेके लिए साथ साथ चला।

"अनेक पेचीले रास्तों और ऊबड़खाबड़ टीलोंको नाँघते हुए हम एक बड़े रम्य स्थानमें पहुँच गये। उस स्थानमें कई बड़ी सुन्दर और बहुमूल्य इमारतें बनी हुई थीं। सब इमारतोंके मुख्यद्वारपर सशस्त्र प्रहरी तैनात थे। मुझे साथ लेकर युवती एक इमारतमें घुस गयी। मुझे अन्दर जाते देखकर पहरेवालोंने बड़ी तीखी नज़रसे मेरी ओर देखा, पर युवतीके साथ होनेके कारण कुछ बोले नहीं।

"कुछ देर बाद मुझे बड़ा ही हल्ला सुन पड़ा। बाहर एक साथ बहुतसे आदमियोंके दौड़ने और शोर करनेकी आवाज़ सुनकर युवती पीली पड़ गयी। मुझे पीछे-पीछे आनेका इशारा करके वह बड़े वेगसे इमारतके घूमघुमौये रास्तोंको पार करने लगी। बहुत दूरतक चलनेके बाद एक दरवाज़ा मिला। बड़ी युक्तिसे दरवाज़ा खोलकर उसने मुझे भाग जानेके लिये कहा। मैं भी आपत्तिकी आशंकासे आकुल हो रहा था। उसके निदेशानुसार उस रास्तेसे निकलकर भाग चला। मैं

अभी थोड़ी ही दूर जा पाया था कि कई आदमी हाथोंमें मशाल लिये, हल्ला करते मेरे समीप पहुंच गये। उन्हें पास आया देखकर मैंने भी भागना व्यर्थ समझा। चुपचाप एक स्थानपर खड़ा हो गया। अब मुझे निश्चय हो गया, कि जिन अफरीदियोंका दमन करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ, आज उन्हींके चङ्गुलमें फँसना पड़ा है। उस समय युवतीकी रक्षा करनेका मुझे मन-ही-मन बड़ा दुख हुआ;किन्तु उस समय इन सब बातोंके विचारनेका समय न था। मैं भावी विपत्तिकी आशंकासे पल-पलपर विह्वल होने लगा।

"अफरीदी मेरे पास आ गये। उन्होंने मेरे हाथोंमें लोहेकी जंजीर डाल दी और कमरमें रस्सा। इस भाँति मुझे वन्दी बनाकर वे खींच ले चले। मैं नहीं समझ सका कि मुझे इन लोगोंने किस अपराधमें कैद किया है, किन्तु फिर भी उनके साथ जाना ही पड़ा। मैं बराबर उन लोगोंके साथ चला गया। बड़ी दूर चलनेके बाद हमलोग एक गुफामें पहुँचे। गुफा बड़ी ही अन्धकारपूर्ण और दुर्गन्धि-युक्त थी। मुझे उसी गुफामें डालकर उन लोगोंने गुफाके द्वारपर एक बड़ा भारी पत्थर रख दिया। इसके बाद वे सभी चले गये, मैं उसी काल-कोठरीमें मृत्युसे भी अधिक यंत्रणा भोगने लगा।

"किसी किसी कदर रात बीत गयी। सूर्यका प्रकाश चारों ओर फैल गया। कुछ दिन चढ़नेके बाद फिर वे ही अफरीदी आये और अपने साथ ले चले। मुझे नहीं मालूम था कि वे मुझे कहाँ ले जावेंगे, फिर भी मैं उनके साथ-साथ चला।

"कुछ देर बाद हमलोग एक बड़े ही विशाल महलके द्वारपर पहुंचे। महलके अन्दर घुसकर अनेक रास्तों, बरण्डों और कमरोंको पारकर हमलोग एक बड़े भारी कमरेके अन्दर दाखिल हुए। यह कमरा राज-दरबार था। अफरीदियोंके राजा विविध मणि-रत्नोंसे युक्त राजमुकुट पहने हुए स्वर्ण-सिंहासनपर विराजमान थे। दरबारमें बिलकुल शान्ति छायी हुई थी। मेरे पहुँचनेपर अफरीदियोंने मेरा अपराध राजासे कह सुनाया। सुननेके थोड़ी ही देर बाद उन्होंने अपना फैसला भी सुना दिया। दुभाषियाने मुझे बतलाया कि राजकुमारीके महलमें घुसनेके कारण मुझे पहाड़की चोटीसे गिराकर प्राणदण्डकी आज्ञा मिली है। मैं इस निष्ठुर निर्णयको सुनकर काँप गया।

"कई अफरीदियोंके साथ मुझे चलना पड़ा। वे मुझे पहाड़की एक ऊँची चोटीपर ले गये और वहाँसे मुझे नीचे ढकेल दिया।......

"भयसे मैं चिल्ला उठा। उसी समय मेरी आँखें खुल गयीं। देखा, मैं रातको जिस चट्टानपर सोया था, उससे नीचे लुढ़क पड़ा हूँ। उषा मन्द-मन्द मुस्कुरा रही हैं। उस समय भी भयसे मेरा शरीर थर-थर काँप रहा था। मैं अपनेको संभालकर सोचने लगा,—"तो क्या रातकी वह सारी घटना स्वप्न है ?"

"मेरा घोड़ा पास ही बँधा हुआ था। उसे खोलकर मैं साथ ले चला। कुछ दूर चलनेके उपरान्त उसपर चढ़कर मैं नीचे उतरने लगा।

"दिन उस समय चढ़ आया था। धूपकी सुनहली सारी पहने हुए प्रकृति-नटी विश्व-मंचपर थिरक रही थी। वृक्षोंकी कोमल-कोमल हरी पत्तियां झूम-झूमकर ईश्वरका गुणगान कर रही थीं। मैं वेगसे नीचेकी ओर उतर चला।

[४]

"नीचे उतरकर देखा, दूरतक ख़ीमेका कहीं पता नहीं। मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही। मैं आँखें फाड़-फाड़कर चारों-ओर देखने लगा, पर कहीं कुछ भी दिखाई न पड़ा। मेरे मनमें तरह-तरहकी बातें आने लगीं। मेरी अनुपस्थितिमें कहीं अफरीदियोंने सेनापर आक्रमण तो नहीं कर दिया? यदि सचमुच ऐसा हुआ हो, तब तो सैनिक बड़ी विपत्तिमें पड़े होंगे। मैं यही सब बात सोचता घोड़ा बढ़ाये चला जाता था। ध्यानसे देखनेपर मुझे मालूम हुआ कि यह वह स्थान ही नहीं है, जहाँ ख़ीमा गाड़ा गया था। तब क्या राह भूलकर मैं किसी दूसरी ओर निकल आया हूँ? बहुत संभव है, यही हो। तो अब मेरा कर्त्तव्य क्या है? किस यत्नसे मैं अपने साथियोंतक पहुँचूं। यदि उनके पास शीघ्र न पहुँच सका तो भूख-प्याससे भी बुरी दशा होगी। मेरी तबीयत घबड़ाने लगी। किंकर्त्तव्यविमूढ़की भाँति मैंने घोड़ेको छोड़ दिया! वह अपने इच्छानुसार इधर उधर दौड़ने लगा।

"दोपहर ढल गयी, पर ख़ीमाका पता न लगा। इधर भूख-प्याससे मैं बेचैन हो रहा था, एक चुल्लू जलके लिये, एक मुट्ठी

दानेके लिये तरस रहा था। उस समय मेरे मनमें हुआ, सब जगह रुपया पैसा मूल्यवान नहीं है। बहुत समय रुपया पैसा रहते, आदमीको भूखों मर जाना पड़ता है। मेरी आज वही दशा है। न मालूम भाग्यमें क्या लिखा है! भाग्यवादपर मेरा विश्वास न था, किन्तु उस दिन सहसा मेरे मुहसे ये शब्द निकल गये।

"इसी समय मेरे सामनेसे एक सुन्दर हिरन छलाँगें मारता हुआ निकला। उसे देखकर, उसके शिकार करनेका अपना लोभ मैं रोक न सका। भरी हुई पिस्तौल जेबमें थी। मैंने हिरनके पीछे घोड़ा छोड़ दिया। हिरन चौकड़ियाँ भरने लगा, घोड़ा भी हवासे बातें करने लगा।

"हिरनके पीछे दौड़ते-दौड़ते मैं एक सुन्दर पार्वतीय उपत्यकामें जा पहुँचा। वह स्थान चारों ओर पर्वतशृङ्गोंसे भरा हुआ था। मैं हिरनके बहुत नजदीक पहुँच गया था। उसे लक्ष्यकर मैंने पिस्तौल दाग दी। पिस्तौलकी आवाज़से वह शस्य श्यामला उपत्यका गूंज उठी। पर मेरा निशाना ख़ाली गया, हिरन भी छलाँगें मारता कुछ दूर निकल गया। मैंने दूसरी बार पिस्तौल दागनी चाही, इस समय एक गंभीर ध्वनिसे मेरा ध्यान पर्वत-शिखरकी ओर आकर्षित हुआ। मैंने देखा, एक दिव्य वपुधारी तेजःपुञ्ज महात्मा क्रोधरक्त नेत्रोंसे मेरी ओर देख रहे हैं। उनका लम्बा-चौड़ा, हृष्ट-पुष्ट शरीर था, बड़ी बड़ी आँख थीं, घुटनोंतक लटकते हुए हाथ थे। उन्हें देखकर भयसे मेरा शरीर थर-थर काँपने लगा। इसी समय उन्होंने घन-गंभीर

स्वरमें कहा—"तुमने आश्रमके मृगको मारनेकी इच्छा की थी, अतः तुम शृङ्गाल बन जाओ और पशु-जीवन व्यतीत करो।"

"महात्माने उक्त बातें देववाणी संस्कृतमें कही थीं। संस्कृत-पर मेरा पहलेसे ही बड़ा अनुराग था। मैंने बड़े प्रेमसे संस्कृतका अध्ययन किया था, अतः उनकी बातें समझते देर न लगी। भारतीय तपस्वियोंके बारेमें मैंने पुस्तकोंमें पढ़ा था। उनके शापसे मैं बड़ा भयभीत हुआ। मैं उनके पैरोंपर गिरकर क्षमा प्रार्थना करने लगा। बहुत रोने गिड़गिड़ानेपर वे बोले—"तुमने अक्षम्य अपराध किया है, किन्तु अब मैं तुम्हें क्षमा कर देता हूं। हिंसा महापाप है। तुम उसी पापकी ओर अग्रसर हुए थे, किन्तु ईश्वरने तुम्हें बचा लिया। जाओ, मैंने तुम्हें क्षमा किया; लेकिन फिर कभी ऐसा न करना।"

"तपस्वीकी बात सुनकर मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ा। उन्होंने मुझे उठा लिया और अपने साथ आश्रममें ले गये। वहांका दृश्य देखकर मेरी नास्तिकता दूर हो गयी और मैं एक भारतीय कट्टर आस्तिक बन गया। तपस्वीने मुझे भूखा देखकर कुछ फल दिये। फलोंके खानेपर मेरी भूख प्यास जाती रही। तपस्वीने मुझसे कहा—इसके खानेसे चार दिनोंतक भूख प्यास लगती ही नहीं।

"फलोंको खाकर मुझे इतनी तृप्ति हुई, जितनी शायद जीवनमें किसीको कभी न हुई होगी। शान्तिके उस चिर आवाससे लौटनेकी मेरी इच्छा ही न होती थी। जी करता था, अपना

शेष जीवन इन्हीं महात्माकी चरण-सेवामें व्यतीत करूँ। मैंने बड़े संकोचके साथ यह बात तपस्वीसे कही। सुनकर वे हँसे। उनकी हँसीसे दशों दिशायें मुखरित हो उठीं। बोले—"तू अज्ञानी है। जबतक तेरी वासनाओंका अन्त न हो जायगा, इच्छायें मर न जायँगी, तबतक तुझे यहाँ रहनेका अधिकार न प्राप्त हो सकेगा। पहले अपनी वासनाओंका बलिदान कर, उसके बाद यहाँ रहनेकी।"

"मैंने नम्रतापूर्वक प्रश्न किया—"महाराज, इच्छाओंका अन्त नहीं, वासनाओंकी कमी नहीं; फिर यह क्योंकर संभव है कि शीघ्र उनका अन्त किया जा सके?"

"तपस्वी बोले—"शीघ्र! शीघ्रता तो सर्वनाशका मूल है। प्रत्येक काम करनेके पहले अपनी योग्यताको खूब नाप-तौल लो, सहसा कोई काम न कर बैठो। ऐसा करनेसे अन्तमें पछताना पड़ता है। जीवनकी यह सबसे प्रधान और पहली गलती है, जिसे प्रायः प्रत्येक प्राणी किया करते हैं।"

"मैं बोला—"तो महाराज, मुझे वह उपाय बताइये जिससे मैं यहाँ रहनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ।''

"महात्माने कहा—"तुम अपने देश चले जाओ। वहाँ जाकर अपने परिवारके साथ रहो और भरसक वासनाओंसे बचनेका प्रयत्न करो। जिस दिन तुम वासनाओंको अपनेसे दूर कर सकोगे उसी दिन मैं तुम्हें अपने आश्रमके योग्य समझूंगा।"

"मैं बोला—"महाराज! आप एक अनहोनी बात कह रहे हैं। स्त्री-पुत्रके साथ रहकर भला कोई अपनेको वासनाओंसे कैसे बचा सकेगा? मैं यह नहीं समझ सका।"

"महात्मा बोले—"यही तो विशेषता है। जो मनुष्य वनमें रहेगा, जो वासनाओंसे, विलासितासे अलग रहेगा, उसके पास वासना आकर करेगी ही क्या? उससे यदि वासनायें दूर हो जायं तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह तो स्वाभाविक है। किन्तु जो मनुष्य दिन-रात वासनाओंके समुद्रमें रहते हुए उसे अपने हृदयसे निकाल फेंके, वास्तवमें वही जयी है। उसीका काम प्रशंसनीय है।"

"इसके बाद तपस्वीने ज़ोरसे तीन बार ताली बजायी। ताली बजाते ही आवाज़ आयी—टन्-टन्-टन्। तपस्वीने कहा—"यह घण्टी सदा तुम्हारे साथ रहेगी। तुम जहाँ कहीं रहोगे, बीच-बीचमें यह घण्टी तुम्हे इसकी याद दिलाती रहेगी। जिस समय तुम अपनी वासनाओंपर विजय प्राप्त कर लोगे उस समय यह घण्टी कई दिनतक लगातार बजती रहेगी। उस समय मैं मंत्र-बलके द्वारा अपने आश्रममें बुला लूंगा। बोलो, तुम्हें हमारी बात मंजूर है?"

"मैंने कहा—"महाराज, बड़ी उत्सुकतापूर्वक मैं उस दिनकी प्रतीक्षा करूँगा, जिस दिन पुनः आपके दर्शन होंगे।"

"महात्माकी कृपासे मैं शीघ्र ही अपनी सेनामें पहुच गया। सिपाही मेरे इस आकस्मिक अन्तर्धानसे बड़े व्याकुल हो रहे

थे। मुझे पुनः जीतेजी लौटा देखकर उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उसके बाद मेरा जी वहाँ एक क्षण भी न लगा। मैं इस्तीफा देकर वहाँसे लौट आया।

"घर आनेके बादसे मैंने अपना जीवन किस सादगीके साथ बिताया है, यह किसीसे छिपा नहीं है। मैं जीवनमें सदा इसी बातका प्रयत्न करता रहा हूं कि किसी प्रकार महात्माकी सेवा करनेकी योग्यता प्राप्त कर सकूँ। आज वह दिन आ गया है। अतः मैं उनको सेवामें जाता हूँ। मेरी प्रतिज्ञा आज पूरी हुई। मैं कृतकृत्य हो गया।

"इस आश्चर्य-घटनाका रहस्य यहाँ समाप्त हुआ। आशा है, अब किसीको मेरे इस आकस्मिक अन्तर्धानसे विस्मय न होगा!"

कप्तान टामसनकी जीवनी समाप्त हो गयी। हम सबलोग आश्चर्यचकित होकर एक दूसरेका मुँह देखने लगे।

गरीबकी बेटी

शान्ति रामदेवजीकी सबसे बड़ी लड़कीका नाम है। जयदेयी और मोहिनी, उनके दो लड़कियां और भी हैं। शान्तिकी उमर इस समय बारह वर्षकी हो चुकी है, परन्तु अभीतक उसकी सगाई नहीं हुई है। बेचारे रामदेवजीको जितनी चेष्टा करनी चाहिये थी उससे भी कहीं अधिक की, परन्तु दुर्भाग्यवश अभीतक अच्छे लड़केकी विध नहीं मिली। दो-एक लड़के ध्यानमें आये भी, परन्तु उनकी आर्थिक दशा इतनी कमजोर थी कि उनको लड़की ब्याह देना, मानो लड़कीको कुंवेमें ढकेलनेके समान था। जो मनुष्य आप ही दूसरोंके सहारे जीवन व्यतीत करता हो, भला उससे विवाह करके लड़कीका भविष्य नष्ट नहीं करना है तो और क्या करना कहा जा सकता है? रामदेवजीकी अपनी भी ऐसी स्थिति नहीं थी कि जिससे इस तरहके लड़केको जमाई बनाके लड़की और जमाई दोनोंका खर्च निबाह सकें। वे एक साधारण गृहस्थ थे, मैट्रिकतक अंगरेजी पढ़कर ही संसार-समुद्रमें कूद पड़नेको लाचार हुए थे। जिस

समय वे कालेजमें भरती होनेकी तैयारी कर रहे थे, ऐन उसी मौकेपर उनके पिताका देहांत हो गया। घरकी अवस्था एक-बारगी ही इतनी कमजोर थी कि, "रोज कुंवा खोदने और रोज पानी निकालने"वाली कहावतको चरितार्थ कर रही थी। जितना कमाते थे उतना खर्च हो जाता था। बिरादरीके नियमके अनुसार, देशकी जगह-जमीन बंधक रखकर जिस-तिस तरहसे उन्होंने अपने पिताका खर्च किया। दस-पंद्रह दिन खूब धूम-धाम रही, यही मालूम होता था मानो उनके पास लाखों रुपये हों, परन्तु खर्चेका काम निपटते ही उन्हें अपनी असली स्थिति-का ज्ञान हो गया। किस प्रकार गृहस्थीका खर्च निबाहा जाय—यही उनकी एकमात्र चिन्ता थी। उनके पिताजी जिस गद्दीमें साठ रुपये मासिकपर मुनीमी करते थे; वही जगह बड़ी कठिनाईसे पचास रुपये मासिकपर मिली। काम बहुत कठिन था, सुबह आठ बजेसे रात दस बजेतक काम करना पड़ता था, सिर्फ खानेभरकी छुट्टी मिलती थी। गद्दीमें थोड़ा-बहुत अंग्रेजीमें चिट्ठी-पत्री लिखनेका काम भी पड़ता था, इसके लिये एक बंगाली महाशयको दस रुपये मासिक देने पड़ते थे। अब वह काम भी उन्होंने सम्हाल लिया। धीरे-धीरे इस लिखा-पढ़ीसे उस काममें अच्छी तरक्की हुई। बंगाली महाशयकी लेखनी एक क्लर्ककी तरहकी थी, जिसमें बराबरीके बदले खुशामदके शब्द अधिक रहते थे, परन्तु रामदेवजीकी लेखनीमें व्यापारी-जातिके होनेके कारण वह चमत्कार मौजूद था जो किसी व्यापारीमें

होना चाहिये। इसका परिणाम शीघ्र ही विदित होने लगा। जिन विदेशी व्यापारियोंके मनमें इस फार्मकी साधारण इज्जत जंच रही थी, उन्हीं व्यापारियोंको सिर्फ लेखनीकी प्रतिभाके द्वारा ही इस फार्मकी इज्जत कई गुनी अधिक जंचने लगी। व्यापारका आधार परस्पर विश्वासका बढ़ना ही है। विश्वास बराबरीके नाते जितना शीघ्र बढ़ता है गर्ज और खुशामदसे उतना ही कम होता है। संसारके सभी बाजारोंमें बेचवालसे खरीददारकी गरज अधिक होती है,परन्तु हमारे यहां अपनी नासमझीके कारण—अथवा यों कहिये कि ऐसे आदमियोंके द्वारा पत्रव्यवहार करनेसे जिनका कारबारसे विशेष सम्बन्ध नहीं है—खरीददार होकर भी दबकर चलना पड़ता है। बाबू रामदेवजी इन बातोंको भलीभांति समझते थे, इससे उन्होंने लिखा-पढ़ी द्वारा अपने मनके अनुकूल कारबारका रास्ता ठीक कर लिया।

जिस समय हमारी यह कहानी आरम्भ होती है, उस समय उनकी तनख्वाह पचाससे बढ़कर एकसौ रुपये हो चुकी थी। गद्दीमें इनका मान भी अच्छा होने लगा था, परन्तु इतनी साधारण आयसे उनकी आर्थिक दशा नहीं सुधर सकती थी। जो कुछ थोड़ा-बहुत बचा सकते थे वह अपने पिताके खर्चके समयका ऋण चुकानेमें पूरा हो जाता था। हां, इस समय उस ऋणसे उनका पिंड अवश्य छूट चुका था।

सोमवती अमावस्याका दिन था। बा० रामदेवजीकी पत्नी अपनी कन्या शान्तिको साथ लेकर गङ्गा-स्नानके लिये गयी थी।

भीड़ बहुत अधिक थी। स्थानीय सभाओंद्वारा स्वेच्छासेवकों-का इन्तजाम था। उन्होंने बहुत ही उत्तम रीतिसे स्नानार्थ यात्रियोंके आने-जानेके रास्तोंका प्रबन्ध कर रखा था। परन्तु भीड़की अधिकताके कारण बीच-बीचमें इतनी धक्का-धुक्की हो जाती थी कि स्वेच्छासेवकोंके मना करनेपर भी लोग इस भीड़-में घुस पड़ते थे। इसी गड़बड़ीके समय शान्ति अपनी मांसे पीछे रह गई। उसकी मां भीड़में आगे निकल गई। उसने समझा अभी मां पीछे ही है। कुछ देर तो एक ओर खड़ी रहकर उसने राह देखी, परन्तु दस पन्द्रह मिनट हो जानेपर भी जब वह नहीं मिली तब उसका धीरज जाता रहा, खड़ी खड़ी रोने लगी। उसको रोती देखकर एक स्वयंसेवक उसके पास आया और उससे रोनेका कारण पूछा, उसने कहा "मैं और मां स्नान करनेको साथ ही आयी थी, परंतु यहां आकर उससे मेरा साथ छूट गया, अब मैं उसे कहां पाऊंगी?" स्वयंसेवकने उसे धीरज बंधाया और कहा तुमको मैं अपने कैम्पमें भेज देता हूं। हो सका तो तुम्हारी मांको भी ढूंढ़के ले आऊंगा, नहीं तो तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा दिया जायगा, तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो। इतना कहकर उसने अपने एक साथीको उसे कैम्पमें पहुंचा आनेको कहा। इधर कुछ दूर भीड़में निकल जानेके बाद जब उसकी मांने पीछे फिरके देखा तो शान्तिको नहीं पाया। उसके होश उड़ गये; परन्तु भीड़ इतनी अधिक थी कि वहांपर खड़ी रहना कठिन ही नहीं, परन्तु असम्भव था। लाचार भीड़के धक्कोंसे

बहुत दूर आगे निकल गई तब कहीं खड़ी होनेको जगह मिली। सकुचाते सकुचाते पासके खड़े हुए स्वयंसेवकसे सब हाल कहा। उसने उसको आश्वासन देकर कहा—"आप निश्चिन्ततासे स्नान कीजिये, मैं खोज करता हूं, शायद वह अकेली समझी जाकर कैम्पमें भेज दी गयी हो। आपके स्नान करके लौटते-लौटते मैं ढूंढ़ लानेकी चेष्टा करता हूं।" इतना कहकर स्वयं-सेवक शीघ्रतासे कैम्पकी ओर चला गया। वहां जाकर पूछ-ताछ करनेसे मालूम हुआ कि एक दस—ग्यारह वर्षकी बालिका अपनी मांका संग छूट जानेसे वहां लायी गयी है। तुरन्त ही उसको बुलाकर उसके सामने उपस्थित किया गया। उसने उसका नाम-पता पूछा। जो कुछ उसने उत्तर दिया उससे उसका अभीष्ट पूरा हुआ। उसे साथ लेकर वह वहां आया जहां उसकी मां स्नान करके उसकी राह देख रही थी। दूरसे ही शान्तिको पहिचानकर उसके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। स्वयंसेवकोंको आशीष देते हुए उसने अपने घरका रास्ता लिया।

जिन स्वयंसेवकने शान्तिको उसकी मांसे लाकर मिलाया था वे स्वयंसेवकोंके कप्तान बाबू मनोहरलालजी थे। वे स्व-भावके बहुत ही सज्जन पुरुष थे। करोड़ों रुपयोंकी सम्पत्ति पास होते हुए भी जनताकी सेवाके लिये वे बराबर आगे रहा करते थे। काम पूरा हो जानेपर जब वह घर लौटकर आये, अपनी पत्नी लक्ष्मीसे बोले—"आज घाटपर मैंने एक ऐसी

बालिका देखी जो रूपमें साक्षात् लक्ष्मी ही थी। ढंगसे मालूम हो रहा था कि उसकी सगाई अभी नहीं हुई है, क्योंकि यदि उसकी सगाई हो चुकी होती तो अपने समाजकी प्रथाके अनुसार उसके बदनपर साधारण गहने अवश्य ही होते, परन्तु पांवोंमें सिवाय एक-दो चांदीके आभूषणोंके उसके बदनपर और कुछ भी गहने नहीं थे। यदि मेरा अनुमान सत्य है तो मुरलीकी सगाई मैंने उसीसे करनेका निश्चय किया है। लड़कीने अपने पिताका नाम रामदेवजी बताया है। उसने अपने मकानका जो ठिकाना बताया है, उसीसे मैं समझ गया यह संबन्ध मजेमें हो सकेगा। हां, तुम्हारी इच्छाके अनुसार हजार-बारह सौका "हराभरा" और पांच-चार हजारके "आंगीमेवा" तो न आ सकेंगे, पर बहू ऐसी आवेगी जैसी दायजा देनेवालोंके घरोंमें नहीं हुआ करती।" बाबू मनोहरलालजीकी यह बात सुनकर लक्ष्मी एकदम उछल पड़ी, मुंह फुलाकर कहने लगी, क्या बड़े आदमियोंके घरोंमें अच्छी लड़कियां हुआ ही नहीं करतीं? क्या अच्छी लड़की गरीबोंहीके घरोंमें जन्म लेती है? मुरली सोलह वर्षका हो चुका, गिरधारी तेरह वर्षका हो गया, अभीतक उनकी सगाई ही नहीं हुई। यदि पांच-छः वर्षके होते-होते सगाई कर दी गयी होती तो आजतक न जाने कितना दान-दायजा आया होता, परन्तु आप तो मेरी एक भी नहीं सुनते, अपनी ही जिद्द पकड़ रखी है। अब सगाई करनेकी बात उठायी तो ऐसी जगह जहांसे दान-दायजा तो क्या, उल्टे

कङ्गालकी छोरीको घरमें लाकर मेरी सहेलियोंमें मुझे और शरमाओगे।

इसपर बाबू मनोहरलालजीने कहा—"अच्छा, हमारे दो लड़के हैं। एकके लिये मैं इसी लड़कीको लानेकी चेष्टा करता हूं, दूसरेके लिये तुम्हारे इच्छानुसार खूब बड़े आदमीको लड़कीकी खोज की जायगी। जब दोनों घरमें आ जायंगी तब तुमको इनमें क्या भेद है—आप ही मालूम हो जायगा।" इस प्रकार दोनों पति-पत्नियोंका समझौता हो जानेपर दूसरे दिन बाबूसाहबने बा० रामदेवजीको बुलवाया। उन्होंने उनसे रूबरूही बातचीत करना उचित समझा, क्योंकि सगाई-व्याहमें बीचवालोंके द्वारा कितना अनिष्ट होता है—यह उनसे छिपा नहीं था।

बाबू रामदेवजीके आनेपर उन्होंने साफ शब्दोंमें अपना अभिप्राय कह सुनाया, जिसे सुनकर एक बार तो वे बहुत चकराये, परन्तु बाबू मनोहरलालजीके समझानेपर वे इस बातको स्वीकार करनेके लिये लाचार हो गये। बाबू रामदेवजीने साफ साफ कह दिया कि मेरी ऐसी हैसियत नहीं है कि मैं आपको आपकी प्रतिष्ठाके अनुसार दान-दायजा दे सकूं, इसलिये आप इन बातोंपर भी भली प्रकार विचार कर लें। बाबूसाहबने उत्तर दिया, "आप इन बातोंका कुछ भी विचार न करें, मैं अग्रवाल महासभाके प्रस्तावोंको माननेवाला आदमी हूं, इसलिये आपको इस प्रकारका कोई भी कष्ट न उठाना

पड़ेगा। मुझे तो आपकी सर्वगुणसम्पन्ना कन्या "पुत्र-वधू-रूपमें" मेरे घरको सुशोभित करनेके लिये आवश्यक है। आपकी दयासे धनकी मेरे पास कमी नहीं है। इस तरह पुत्रको बेच-कर दान-दायजेके धनको मैं हरामका समझता हूं। जो मनुष्य अपनी कमाईके पैसेको छोड़कर इस तरह लड़के-लड़कियोंके बदलेमें दूसरोंके धनसे मौज उड़ाना चाहते हैं वे समाजपर अत्याचार करनेवाले हैं, लड़के-लड़कियोंपर अत्याचार करने-वाले हैं। विवाह एक धार्मिक कृत्य है, न कि सौदेकी चीज! लड़कीवालेको इस तरह तबाह करके अर्थात् एक गृहस्थीको बरबाद करके दूसरी गृहस्थी बसाना क्या सम्भव है? यही कारण है कि आज सब तरहसे हमलोग पतनकी ही ओर लुढ़कते दिखाई दे रहे हैं।" इस तरह अपने मनके उद्गारोंको निकालते हुए उसी समय अपने पुत्रको, जो सोलह वर्षका एक हट्टा-कट्टा नवयुवक था, बुलाकर उसे बाबू रामदे-वजीको प्रणाम करनेकी आज्ञा दी। पिताके आदेशानुसार मुरलीने प्रणाम किया (मुरली इसी साल मैट्रिक पास करके कमर्सियल कालेजमें भरती हुआ है)। मुरलीकी मुखश्री एवं शीलस्वभाव देखकर बाबू रामदेवजी पुलकित हो उठे। उसी समय रोली मंगाकर उन्होंने उसके तिलक कर दिया, एवं मुट्ठे का १) रुपया बाबू मनोहरलालजीको देकर हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। इस तरह यह संबंध स्थिर करके बाबू रामदे-वजी घर आये। उनकी पत्नी इस समाचारको सुनकर इतनी

प्रसन्न हुई कि जिसका वर्णन लेखनीद्वारा करना एकबारगी ही असम्भव है।

यथासमय मुरलीके साथ शान्तिका शुभ विवाह सम्पन्न हो गया। इस विवाहमें एक भी ऐसी बात नहीं हुई जिसको यह कहा जा सके कि यह न करनेसे भी चल सकता था। बाबू मनोहरलालजीने विवाहमें फालतू खर्च न लगाकर शान्तिके नामसे एक बालिकाविद्यालय खुलवा दिया,जिसमें हिन्दू-जातिकी कन्याओंको मुफ्तमें शिक्षा देनेका प्रबंध किया गया।

कुछ दिन बाद शान्ति मुकलावा देकर ससुराल भेज दी गयी। इस बीचमें बाबू रामदेवजीकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गयी है, उनका काम खूब जोरोंपर चल रहा है। गत वर्ष फार्मको लाभ हुआ, इसका श्रेय इन्हींको मिला। इसका पुरस्कार भी इनको मिला; दो हजार रुपये तो गत वर्षके लिये इन्हें एलाउंस दिया गया। इस वर्षसे उस विभागमें इनके लिये मुनाफेपर दस परसेन्ट कमीशनकी व्यवस्था कर दी गयी। इससे इनकी आय अच्छी होने लगी। बाबूसाहबने अपनी दूसरी कन्याका विवाह एक सुन्दर पढ़े लिखे गरीब घरके लड़केके साथ कर दिया। विवाहमें फालतू रुपये नष्ट न करके लड़केके नामसे पांच हजार रुपये बैंकमें जमा करा दिये एवं अपने खर्चसे उसकी उच्च शिक्षाका भी प्रबन्ध करा दिया। बाबू साहबका विचार उनको हाईकोर्टका वकील बनानेका है।

मेरा नाम सरस्वती है। मेरा पीहर रामगढ़ है। व्याही मैं नवलगढ़ गयी हूं। मैं जिस तरहकी कथा आपको सुनाने चली हूं वैसी प्रायः हिन्दू-स्त्रियां अपने मुंहसे नहीं कहा करतीं। परन्तु किया क्या जाय, बिना कहे भी तो हमारे समाजकी आंखें नहीं खुलना चाहतीं। यदि सबकी तरह मैं भी लज्जाके वशीभूत हो, उन अत्याचारोंको, जो समाजकी स्त्रियोंपर हो रहे हैं, समाजके महानुभावोंको न सुनाऊं तो न जाने और कितने दिनोंतक इसी तरहसे मेरी बहिनोंको इस स्वर्गतुल्य भूमिपर रहकर भी नरककी-सी यातना सहते-सहते अपने अमूल्य जीवन योंही अकारथ नष्ट करने पड़ें। उचित तो यही था कि हमारे समाजके नेतागण आप ही अनुभव करके हमपर होनेवाले अत्याचारोंको बन्द कराते। परन्तु यह तो हो नहीं रहा है; इसीलिये आज मुझे ही अपने—केवल अपने ही क्यों, अपनी तरहकी असंख्य अबलाओंके—अपरिमित कष्ट अपने हो मुखसे आपको सुनानेके लिये उद्यत होना पड़ा है।

जिस समय मैं सात वर्षकी थी उसी समय मेरी सगाई कर दी गयी थी। मेरे लिये वर भी मेरी ही उमरका चुना गया था। हालां कि उस समय हमारी बराबरीकी जोड़ी समझी गयी थी, परन्तु ब्याहके समय हम दोनोंकी उमर तेरह सालकी होनेपर भी, मैं दोहरे शरीर और लम्बे कदकी होनेके कारण पतिदेवसे तीन-चार वर्ष बड़ी मालूम होती थी। बारात खूब धूमधामसे आयी थी। दोनों ओरसे ही धन, कुछ भी महत्त्वकी चीज न समझी जाकर, आंखें मूंदकर खर्च किया जा रहा था। वरको देखकर मेरे मनमें क्या-क्या भाव और विचार उठ रहे थे,इसकी किसीको कुछ भी परवा नहीं थी। परवा होती भी क्यों? विवाह तो लड़के-लड़कीका नहीं हो रहा था, असलमें हो रहा था दोनों ओरकी थैलियोंका। उससे वर और कन्याको सुखी होनेका मौका मिलेगा या नहीं, इसकी ओर ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं समझी जा रही थी। दोनों ही समधी अपनी-अपनी बड़ाईके लिये जोरशोरसे उद्योग कर रहे थे। हमारी ओरसे बारातियोंकी खूब खातिरदारी हो रही थी, इससे वे भी पिताजी-को खूब बड़ाई कर रहे थे। इसी प्रकारसे सब लोग आनन्द मनाते हुए विवाहके समस्त कार्य्य कर रहे थे। घरके अन्दर स्त्रियां भी खूब आनन्दसे गीत गाती हुई नेग-जोग कर रही थीं। यदि दुखी थी तो वह अकेली मैं ही थी, जो इस बड़े भारी मङ्गल-कार्य्यमें भी अमङ्गलकी शंका कर रही थी। जिस वर-कन्याकी जोड़ीके विवाहका यह आनन्द मनाया जा रहा है उसके भविष्य-

के सुख-दुःखकी ओर किसीके ध्यान न देनेकी प्रथा न जाने हमारे समाजमें कबसे चली आ रही है! मेरी तरह कितनी ही हतभागिनियां अपना आरम्भ होनेवाला नवजीवन इस तरह अन्धकारमय समझकर दारुण मनोवेदनासे, न जाने कितने दिनोंसे, अपने हृदयके कोने-कोनेमें रो रही हैं। परन्तु इतनी ही कुशल है कि इस प्रकार छाती फटते हुए भी मुंह खोलकर कहनेकी चाल नहीं है। यदि वे दुखिया मुंह खोलकर कहना आरम्भ कर दें, तो मैं नहीं समझती कि उनके इस असहनीय कष्टके बोझसे दबा हुआ भी समाज किसी प्रकारसे आनन्द मना सके। पर इनका मुंह नहीं खुलता, ठीक वैसे ही, जैसे पराधीन-जाति विदेशीय शासकोंके कानूनके डरसे पराधीनताकी यन्त्रणाओंको मुंह बन्द करके सह लेती है।

अब विवाहके समस्त नेग हो जानेपर बारात बिदा हुई। पिताजीने पहरावनीमें भी जी खोलकर दान-दायजा दिया था। यथा-समय बारात नवलगढ़ पहुंची। जिस समय हमलोग रथसे उतर रहे थे, आगे पतिदेव थे, पीछे मैं। हम दोनोंकी बेमेल जोड़ी देखकर, एक जवान लड़की, जो हवेलीकी पोलीमें खड़ी थी, ठठाकर हंस पड़ी। मालूम होता था उसका विवाह हालहीमें हुआ है। वह सिर्फ हंस करके ही चुप नहीं हुई, पर बोल भी बैठी कि "अरे! वर-कन्याकी जोड़ी क्या है, जैसे ऊंट बैलकी जोड़ी" उसका व्यंग सुनकर मैं बहुत लजा गयी, पर अपने जीमें कुढ़ने और भाग्यको धिक्कारनेके सिवाय और मैं करती ही क्या? गीत
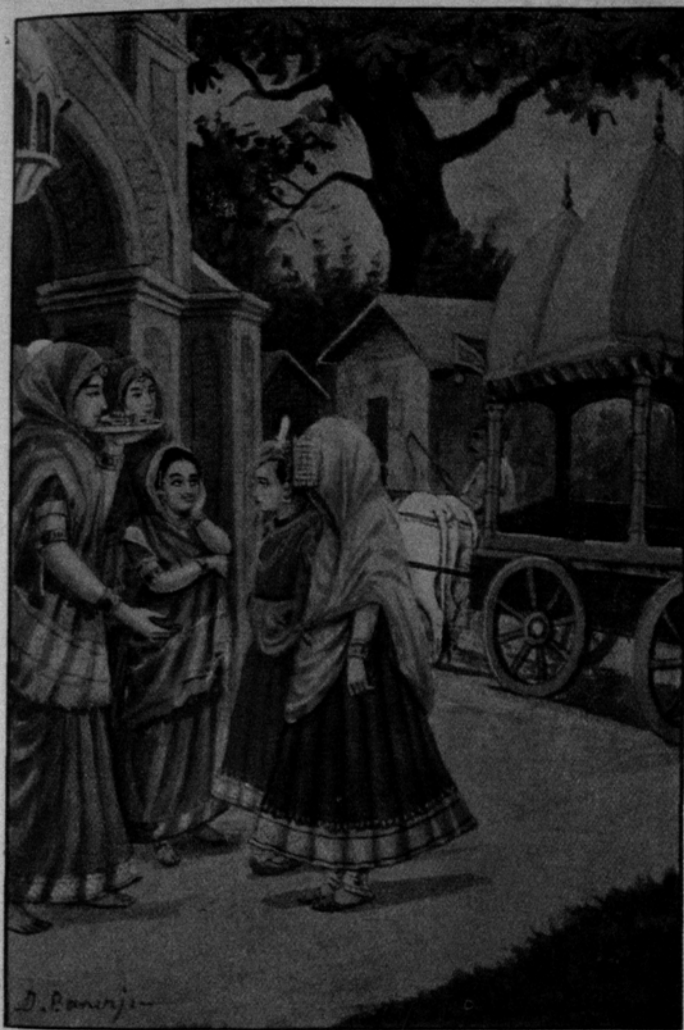
रथसे उतरते समय आगे पतिदेव थे, पीछे मैं। बेमेल जोड़ी देखकर हवेलीकी पोलीमें खड़ी एक लड़कीने हंसकर कहा—"वर-कन्याकी जोड़ी क्या है, जैसे ऊँट बैलकी जोड़ी।" [पृ० १३२

गाती हुई सासजी उस लड़कीकी ओर तिरस्कारकी नजरसे देखकर हमलोगोंको भीतरके चौकमें लिवा ले गयीं।

दूसरे दिन देवीजीके पूजनके लिये जब हमलोग बाजारसे जा रहे थे तब दोनों ओरकी दूकानोंपरसे हमारी बेमेल जोड़ीके विषयमें कितनी ही चर्चाएं सुनाई पड़ रही थीं। उन बातोंको सुनकर मुझे बड़ा ही दुःख हो रहा था, परन्तु साथ ही आश्चर्यका भी ठिकाना नहीं था, क्योंकि ऐसी चर्चा करनेवालोंमें अधिकांश वे ही महापुरुष थे, जो अपने यहां हमसे भी अधिक बेमेल जोड़ीका विवाह करते नहीं शर्माते।

देवीजीके मन्दिरमें पहुंचकर एक और खटकनेवाली रिवाज आरम्भ हुई। नीमकी एक-एक लम्बी छड़ी लेकर एक ओर पतिदेव खड़े हुए और दूसरी ओर उनकी भौजाई खड़ी हुई। ये लोग लगे एक दूसरेको सड़ासड़ छड़ी मारने। साथकी स्त्रियां चारों ओर गोल बांधकर खड़ी हो यह तमाशा देखने लगीं। कुछ देरमें ही पतिदेवकी जीतकी घोषणा कर दी गयी; क्योंकि उनकी भौजाई तो धीरे-धीरे उनको छड़ी छुआ रही थी, परन्तु पतिदेव बड़ी निर्दयतापूर्वक अपनी भौजाईजीकी पीठपर चोट कर रहे थे। एक तो सुकुमार स्त्रीकी जाति, दूसरे उनके वस्त्र इतने महीन थे कि उनके भीतरसे उनका बदन ज्यों-का-त्यों दिखाई दे रहा था। (ऐसे ही वस्त्रोंको पहिने हुए वे हमारे साथकी अन्य स्त्रियां सरे बाजार चली आयी थीं, परन्तु उन्हें कुछ भी लज्जा नहीं मालूम हुई।) पतिदेवकी छड़ीकी सख्त चोटोंसे उनका

बदन कई जगहोंसे छिलतक गया। अन्तमें उन्हें व्याकुल होकर वहांसे हटना पड़ा। यह हार-जीत देखकर स्त्रियां खूब हंसी एवं पतिदेवको जीतकी बधाई देने लगीं। इस जीतकी थोथी बधाईपर मुझे भी हंसी आये बिना नहीं रही।

इसी तरहकी और भी कई रस्में अदा करनी पड़ीं। अब उनका हिसाब देकर मैं आपका समय नष्ट करना नहीं चाहती। तीन दिनके बाद मुझे लेनेके लिये पिताजीके यहांसे सवारी आयी। मेरा छोटा भाई भी साथ आया था। मैं यथासमय विदा कर दी गयी। रास्तेमें एक ऐसी घटना हुई, जिसका उल्लेख करना बहुत ही आवश्यक प्रतीत होता है।

नवलगढ़से चलकर जब हमलोग पड़ावपर ठहरे तो रात हो आयी थी। धर्मशालामें और भी मुसाफिर ठहरे हुए थे। हम लोगोंको एक अच्छी जगह मिल गयी थी! पिताजीका नाम सुनते ही धर्मशालाके कर्मचारीने हमलोगोंकी खातिर करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी। खा-पीकर जब हमलोग लंबी तानकर सो रहे थे, समय अन्दाजन आधी रातका होगा, अचानक सामनेके तिबारेसे किसी स्त्रीकी चिल्लाहट सुनकर मैं चौंककर जाग उठी। उसी चिल्लाहटसे मेरे साथके आदमी भी जाग पड़े थे।

क्या बात है, पूछनेपर कुछ सन्तोष-जनक उत्तर नहीं मिला। मैंने अपने साथके आदमियोंमेंसे एक राजपूतको इसकी खबर लेने भेजा। कुछ देर बाद उन्होंने आकर कहा, एक स्त्री अपने पीह

नवलगढ़ जा रही है। उसके साथ कोई नहीं है। सिर्फ ऊंटवालेके साथ ही उसकी ससुरालवालोंने उसे भेज दिया है। जिस कोठरीमें वह सोई हुई थी उसके दरवाजेमें भीतरसे बंद करनेका सांकल न रहनेसे दरवाजा योंही भिड़ाकर वह सो गयी थी। ऊंटवालेकी नीयतमें फर्क आ जानेसे वह चुपकेसे दरवाजा खोलकर कोठरीके भीतर चला गया, और भीतरसे दरवाजा भिड़ाने लगा। इतनेमें ही वह स्त्री जागकर चिल्ला उठी थी। उसकी चिल्लाहटसे कई लोग वहां पहुंच चुके थे, एवं उस बदमाशको पकड़ लिया था। वह तो थानेमें दे दिया जायगा, परन्तु उसको पहुंचानेके लिये यदि आप कहिये तो अपने साथके आदमी भेज दिये जायं। मेरे साथ काफी आदमी थे, इसलिये तुरन्त ही बंदोबस्त करा दिया गया। यह तो धर्मशालाकी बात थी, यदि रास्तेमें उसकी नीयत बिगड़ जाती और राह छोड़कर किसी बहानेसे एक ओर जंगलमें ले जाकर वह इस तरहका अत्याचार करना चाहता, तो उस समय उस अबलाकी क्या दशा होती?

क्या वे अकलके अन्धे, जो अपनी जवान बहू-बेटियोंको इस तरह रक्षकविहीन एक साधारण ऊंटवालेके साथ भेज दिया करते हैं, कुछ भी इस घटनापर विचार करेंगे? उन्हें उस समय ही ऐसी बातें सोचनी चाहिये, जिस समय वे एक अनजान मनुष्यके साथ एक ही ऊंटपर आगे-पीछे बदनसे बदन सटाकर अपनी आंखोंके सामने अपनी बहू-बेटियोंको सवार कराते हैं। यदि वह मनुष्य पहलेका बदमाश न भी हो तो ऐसे मौकेपर

उसे बदमाशी सूझनेकी कितनी बड़ी सम्भावना है। इस घटना-से मेरे बदनमें आगसी लग गई; रातभर मुझे नींद नहीं आयी। इन्हीं बातोंपर विचार करते हुए भोर हो गया।

मेरी कहानी इस धर्मशालावाली रातकी घटनाके दस वर्ष बादसे आरंभ होती है। आप यदि यही समझ रहे हों कि मैं इतने दिन सुखसे रही तो आपकी बड़ी भूल होगी। इसी अर्सेमें मैंने संसारके प्रायः सभी दुख भोग लिये हैं। विवाहके दो अढ़ाई वर्ष बाद ही बिना ससुराल गये हो मैं विधवा हो गयी। यदि समाजमें यह बेजोड़-विवाहकी प्रथा न रहती, तो शायद पतिके पास रहकर पतिसेवाका सौभाग्य मैं दो-तीन वर्ष भोग लेती। परन्तु ऐसा क्यों होने लगा? मरनेवाला मर गया और मुझे जन्म भरके लिये दुःखी कर गया। परन्तु जिन्होंने हमारे विवाह-के लड्डू खाये थे एवं खुशियां मनाई थीं, जिन्होंने हमें खिलौने समझकर धूमधड़ल्लेके साथ अपने हौसले पूरे किये थे वे लोग तो आज भी इसी तरह खुशियां मनाते हैं। यदि जीवन नष्ट हुआ है तो मुझ अभागिनीका हुआ है, यदि अकाल मृत्यु हुई है तो मेरे पतिदेवकी हुई है। उनका क्या बिगड़ा है? वे तो आज भी इसो तरह अपनी खुशीके लिये मेरी जैसी असंख्य अबलाओंका जीवन नष्ट कर रहे हैं, अस्तु।

शायद मेरे ही दुःखसे दुःखी होकर मुझे और मेरे तीन भाइ-योंको छोड़कर माताजी स्वर्ग सिधार गयीं। जिस समय उनका परलोक-वास हुआ मेरे बड़े भाईकी अवस्था २० सालकी थी।

मेरी भौजाई भी रहने लग गई थी मेरे एक भतीजा भी हो चुका था, जिसके कारण इस दुःखके समयमें भी घरभरमें आनन्द उमड़ा पड़ता था। भाइयोंका प्रेम अपने ऊपर अधिक रहनेके कारण एवं उस बच्चेपर मोह हो जानेसे मैं अधिकांश पीहरमें ही रहा करती थी।

माताजीकी मृत्युके बाद कुछ दिन तो पिताजी हमलोगोंसे बड़े प्रेमसे बातचीत किया करते थे, परन्तु धीरे-धीरे उनका मन कुछ उचटासा मालूम होने लगा। आखिर इसका भेद खुल ही तो गया। तीन-तीन लड़के, पतोहू, पोता सब तरहसे भरे भराये परिवारके रहते हुए, उनकी इच्छा विवाह करनेकी हो गई। लोगोंने उन्हें बहुत समझाया कि घरमें सब तरहका आनन्द है। आपको विवाह करनेकी क्या आवश्यकता है? जिस लाभके लिये विवाह किया जाता है वह तो आपको सब प्राप्त ही है फिर क्यों दुःखको बुलानेकी चेष्टा कर रहे हैं। आपको यह भी सोचना चाहिये कि आपके घरमें जवान लड़की विधवा होकर दुःख सह रही है, यदि आप विवाह करेंगे तो लोग क्या कहेंगे। परन्तु उन्होंने किसीकी एक भी बात न सुनी एवं ४५ वर्षकी अवस्थामें दस हजारकी थैलीके जोरसे दस पन्द्रह दिनके भीतर ही एक पन्द्रह सोलह वर्षकी लड़की विवाहकर घरमें ले आये।

बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि १३ वर्षकी कन्याका विवाह करना तो धर्मके विरुद्ध समझा जाता है, परन्तु इस तरहकी पन्द्रह-सोलह वर्षकी पूरी स्त्रीको विवाहते समय कुछ भी परवा

नहीं की जाती ! यहांतककी पंडितजी महराज भी अपनी दक्षिणा के लोभसे इस तरहके अन्यायमें सहायता करते नहीं शर्माते।

हमारी नयी माताके घरमें आनेके बाद १ वर्षके भीतर ही पिताजीकी कोठीका काम फेल हो गया। काम बिगड़नेका कारण भी पिताजीकी फिजूलखर्ची ही थी, हम चारों बहिन-भाइयोंके विवाहमें उन्होंने इतना अधिक खर्च किया था कि उसके बाद ही उनको हुंडीमें बट्टा लगने लग गया। अब अपने नये विवाहमें रही सही रकम खर्च कर देनेसे काम एकदम ही बंद हो गया।

मेरी ससुरालमें भी सिवा मेरी सासके और कोई नहीं रहा। मेरे ससुरजी भी अपने पुत्रके पीछे ही चल बसे थे। तबसे मेरी सब रकम पिताजीकी कोठियोंमें लग रही थी। इसलिये उनका काम बिगड़नेके साथ ही मैं रास्तेकी भिखारिन बन गई।

बड़े ही खेदके साथ लिखना पड़ता है कि पिताजी मेरी नयी माताके मोहमें ऐसे फंसे कि उन्हें न तो काम बिगड़नेहीका विशेष दुःख हुआ और न हमलोगोंके कष्टोंका ही कुछ ध्यान रहा। कमाईका रास्ता पहले ही बन्द हो चुका था। घरमें जो कुछ जमा-पुंजी थी उसपर मेरी नयी माताने आते ही अधिकार जमा लिया था। अबतक जैसे तैसे गहने-वैने बेचकर भैया घरका खर्च चला रहे थे। परन्तु अब ऐसी एक भी चीज बाकी नहीं रही जिसके बदलेमें कुछ मिल सके। माताजीसे एक पाई भी प्राप्त करना केवल कठिन ही नहीं, पर सर्वथा असम्भव था

बेचारी भौजाईने जहांतक हो सका अबतक काम चलाया। यह मैं जोर देकर कह सकती हूं कि मेरी भौजाई जैसी बहुत ही कम स्त्रियां इस पापमय संसारमें मिलेंगी, ऐसी देवीके संगसे मेरा दुःख बहुत कुछ हलका हो गया था।

आखिर हारकर हम सबने यही निश्चय किया कि भैया कलकत्ते आकर कुछ धन्धेकी फिक्र करें। हमलोगोंको उन्हें परदेश भेजना बहुत ही दुःखदायी मालूम हो रहा था, परन्तु लाचारीकी अवस्थामें सब कुछ करना पड़ता है। पड़ोसकी एक स्त्रीसे भौजाईने राहखर्चके लिये कुछ रुपये उधार लेकर उन्हें जिस-तिस तरह विदा किया।

कलकत्ते पहुंचकर भैया कुछ दिनतक इधर-उधर आज इसके पास कल उसके पास भटते फिरे, परन्तु कामका कुछ भी रास्ता नहीं निकला। एक दिन फिरते-फिरते एक पुस्तकोंकी दूकानपर जा निकले। दूकानके मालिक एक सज्जन पुरुष थे, उनका हाल सुनकर उन्हें तरस आ गया। उन्होंने कहा, आपको मैं पुस्तकें देता हूं, आप फेरी कीजिये, हमारे यहां और भी कई आदमी इसी तरह फेरी करके अच्छा फायदा उठा रहे हैं, आपको इसमें अवश्य सफलता मिलेगी। इतना कहकर उन्होंने एक हैंडबेगमें पचीस-तीस रुपयेकी पुस्तकें रखकर उन्हें बेचनेके लिये भेज दिया। इस तरहकी सज्जनताका बर्ताव पाकर भैयाका उत्साह चौगुना हो गया एवं पहले ही दिन उन्होंने दो रुपयेकी पुस्तक बेचीं अर्थात् आठ आने पैदा किये। एक ऐसे आदमीके लिये

जिसको कोई भी आसरा न हो, पहले ही दिन आठ आना कमा लेना कोई साधारण बात नहीं है। उनकी इस सफलताके लिये उन सहृदय दूकानदार महाशयने भैयाको खूब उत्साहित किया। दूसरे दिन तीन रुपयेकी पुस्तकें बिकीं, तीसरे दिन ५) की बिकीं। इसी तरह पंद्रह दिनमें ही दस-दस बारह-बारह रुपये-की रोजकी बिक्री होने लगी। पहले महीनेमें ही दो सौ रुपयेकी बिक्री हो गई अर्थात् पचास रुपये कमीशनके मिल गये। अब भैयाका और भी उत्साह बढ़ाया गया। पुस्तकें रखनेको बेगकी जगह एक ट्रंक ले दिया गया, ट्रंक ढोनेको एक मुटिया नौकर रख दिया गया। इतनी सहायता पाकर भैयाने भी दौड़-धूप करनेमें कमी नहीं रखी। इसका फल भी उन्हें महीना खतम होते-होते मिल जाता। इस महीनेमें खर्च-वर्च बाद देकर उन्हें पचहत्तर-की बचत हुई। भैयाको उद्योगी पुरुष समझकर उन दूकानदार महाशयने उन्हें एक और सलाह दी। उन्होंने कहा, "जिन कोठियोंमें और आफिसोंमें आप पुस्तकें बेचनेको जाते हैं, वहींसे छपाईका भी काम आपको मिल सकेगा। यदि आप छपाईका काम ला सकेंगे, तो उससे भी आपकी आमदनी बढ़नेका एक दूसरा रास्ता और निकल आवेगा।" भला भैयाको इसमें क्या उज्र हो सकता था। भैयाकी सम्मति मिलनेसे उन्होंने अपने छापाखानेसे छपे हुए कामोंके नमूनोंकी एक किताब मंगाकर उनके हवाले की। अब उन्हें छपाईका भी काम मिलने लगा। इन दोनों कामोंसे तीन-चार महीनोंमें ही उन्हें अच्छी आमदनी

होने लगी। हम लोगोंको खर्च भेजकर भी—जो दस बारह आदमियोंके खाने पहिननेका था—भैया कुछ-कुछ जमा भी करने लगे। एक वर्ष पूरा होते-होते उनके पास एक हजार रुपयेकी पूंजी जमा हो गई।

उन्हीं दूकानदार महाशयने सलाह देकर भैयाको एक छापाखाना खुलवा दिया। कुछ रुपये तो उनके पास थे ही, बाकी रुपये उन्होंने लगा दिये, यह छपाखाना बड़ेबाजारमें खोला गया था। भैयाके परिश्रम और इन महाशयकी मददसे शीघ्र ही काम चल निकला। पहले वर्ष तो विशेष बचत नहीं हुई, परन्तु दो तीन वर्षके भीतर-ही-भीतर खासी आमदनी होने लगी।

अब हमलोग मजेमें हैं। भैयाने हम सबोंको भी कलकत्ते ही बुला लिया है। इस बीचमें पिताजीका स्वर्गवास हो गया। उनके खर्चपर बिरादरीवालोंने ब्राह्मणभोजनके अलावा, बिरादरीको जिमानेका बहुत आग्रह किया, परन्तु भैयाने उनकी एक न सुनी साफ-साफ कह दिया, जब मेरे घरमें २० वर्षकी मेरी विमाता उनके स्वर्गवाससे दुःखी होकर रो रही हैं, तब मैं बिरादरीको नहीं जिमा सकता। सिर्फ साधारण ब्राह्मणभोजन ही कराऊंगा। उन्होंने किया भी यही।

अब मेरी विमाताका मिजाज भी बहुत कुछ ठीक हो गया है। दोनों छोटे भाइयोंका विवाह कर दिया गया है। बहुवें बराबरकी उमरकी न लाकर भाइयोंसे छः-छः-सात-सात वर्ष छोटी लायी गयी हैं, जिससे घरमें खूब ही आनन्द बना रहता

है। किन्तु बराबरकी उमरके विवाहसे जो मेरी दुर्दशा हुई है, उसका परिणाम देखकर भी आज समाजमें ऐसे मूर्खोंकी कमी नहीं है जो इसी प्रकारके विवाह किया करते हैं।

गोपाल ! ओ गोपाल !!

आठ बजनेको हुए, अभीतक सोता ही है, कितनी बार तुमको समझाया, परन्तु अभीतक तुम्हारा यह रास्ता नहीं छूटा।

जम्हाई लेते हुए गोपालने आंखें खोलकर पिताकी ओर क्रुद्ध दृष्टिसे देखते हुए कहा—"आप रोज-रोज क्यों दिक किया करते हैं ? जब आप जानते ही हैं कि मैं आपकी बात नहीं सुनता, फिर आप नाहक क्यों माथा-पच्ची किया करते हैं ?" इस तरह पिताको झिड़ककर गोपाल करवट फेरकर फिर आंखें मूंदकर सो गया।

बाबू राधाकृष्णजी यहांके एक प्रतिष्ठित व्यापारी हैं। यद्यपि इनका स्वभाव ईर्षालु होनेके कारण भले आदमियोंसे इनकी कम पटती है, तथापि धर्म-कर्ममें इनकी अच्छी निष्ठा है। रोज सुबह ५ बजे उठकर पैदल ही गङ्गास्नान करने जाते हैं। वहांसे लौटनेपर प्रायः दो घण्टे भगवानका भजन-पूजन करके तब अपने कारोबारमें हाथ लगाते हैं। गोपाल इन्हींका एक-लौता पुत्र है। बाल्यावस्थामें लाड़-प्यारके कारण बाबूसाहबने

उसको कभी कुछ कहा नहीं, न लिखाने-पढ़ानेकी ही चेष्टा की। यदि कोई उसे पढ़ानेके लिये कहता भी था, तो आप यही कह दिया करते थे कि पढ़कर गोपालको क्या नौकरी थोड़े ही करनी है!

आज वही गोपाल बीस वर्षका हट्टा-कट्टा जवान है, परन्तु उसके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। उसके पिताका लाखोंका कारोबार होते हुए भी उसने आजतक कभी दूकानपर जाकर बही उठाकर नहीं देखी। बही देखनेको उसे आवश्यकता भी क्या थी! खर्चके लिये रुपयोंकी तो उसे कुछ कमी थी नहीं, पहले तो मुनीमजी ही उसकी मांगको अस्वीकार करनेका साहस नहीं कर सकते थे। यदि कभी कुछ बाधा पड़ भी जाती, तो अपनी माताके द्वारा बेचारेको वह डाट दिलवाते कि उसको छठीका दूध याद आ जाता।

गोपालका चाल-चलन बिगड़ चुका था। वह अपने पिताके हाथोंके बाहर हो चुका था। इसका कारण था गोपालके पड़ोसमें ही एक धनाढ्य मुसलमानका मकान। बचपनसे ही उनके यहां गोपालका आना-जाना था, उनके एक बहुत ही सुन्दर कन्या थी, जो गोपालसे तीन-चार वर्ष छोटी थी और उसका नाम गुलशन था। दोनों मकानके सामने एक साथ खेला करते थे, कभी वह गोपालके साथ उसके घर चली आती थी, कभी गोपाल गुलशनके साथ उसके घर चला जाता था। इस तरह परस्परमें उनका आना-जाना बढ़ने लगा, यहांतक कि कभी-कभी तो सारा दिन एक-दूसरेके घर रह जाते थे। इस

आने-जानेमें बाबू राधाकृष्णजीको यदि कुछ आपत्ति था तो सिर्फ यही कि गोपाल उनके यहांकी बनी हुई कोई चीज न खाय। गुलशनके पिता एक नेक मुसलमान थे। उन्होंने गुलशनकी मांसे कह रखा था कि उसको फल-फूलके सिवा और कुछ खानेको न देना। यदि आवश्यकता ही आ पड़े तो गोपालके जमादार-द्वारा ही हिन्दू-हलवाईसे कुछ मंगा लिया करना। परिवार मुसलमान होनेपर भी गुलशनके माता-पिता मांस नहीं खाते थे, इसलिये गुलशनको भी मांस आदिसे हार्दिक घृणा थी।

गुलशन और गोपाल दोनों आनन्दसे अपना बाल्य-जीवन बिताते हुए क्रमसे १२ और १५ सालके हो गये। दोनोंके मनका झुकाव एक-दूसरेके प्रति दिन-दिन अधिकाधिक होने लगा। बाबू राधाकृष्णजी मियां साहबका कुछ दबाव मानते थे, इसका कारण यह था कि मियां साहब एक सच्चे मुसलमान होनेके कारण ब्याज कमाना हराम समझते थे; इसलिये अपनी बहुत सी रकम पड़ोसी राधाकृष्णजीमें बिना ब्याजके ही जमा रखते थे। उनका कारबार सिर्फ चार महीने जाड़ेकी मौसिममें चलता था। उस समय वे भी बाबू साहबकी रकम बरता करते थे। इस प्रकार दोनों व्यापारी ही परस्पर एक दूसरेका दबाव मानते थे। परन्तु यह बात एककी दूसरेपर प्रकट नहीं हो पाती थी; क्योंकि दोनों ही लाभमें थे। गोपाल लड़का था; उसके लिये बाबू राधाकृष्णजीको विशेष चिन्ता नहीं थी। परन्तु "लड़की सयानी हो गयी है," गुलशनकी माता द्वारा यह इशारा पाकर

मियां साहबको अवश्य चिन्ता उठ खड़ी हुई। उन्होंने एक दिन गुलशनको अपने पास बुलाकर बड़े प्यारसे कहा, बेटी, अब तुम सयानी हो गयी। हमारे समाजकी रीतिके अनुसार तुम्हें परदेका कुछ ध्यान रखना चाहिये। ऐसी कोशिश करो जिसमें तुम्हारा और गोपालका मिलना-जुलना कम हो जाय। पिता-की इस आज्ञाके अनुसार अब गुलशन गोपालके सामने आनेमें हिचकने लगी। पहले तो गोपालकी आवाज सुनते ही वह दौड़कर उसके पास चली आती थी और दोनों एक साथ कभी बाजा बजाया करते, कभी ताश खेला करते। इस प्रकार घण्टों बीत जाया करते थे, परन्तु आजकल गोपालके आने और बुलानेपर भी बहुत देर करके आती और खड़ी-खड़ी ही दो-चार इधर-उधरकी बातें करके तुरन्त भाग जाती। अकस्मात् इस परिवर्त्तनको देखकर गोपालको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वह भी बालक नहीं था, थोड़ेमें ही असल बात उसके ध्यानमें आ गई और उसने भी आना-जाना कम कर दिया।

उपरोक्त घटनाका गुल्शनके मनपर बहुत ही अधिक असर पड़ा। वह दिन-दिन दुबली होने लगी। उसकी माताने जब उसका यह हाल देखा तो उसके पितासे कहकर उसे एक बार देश ले जानेका विचार स्थिर किया और यह भी तय हुआ कि वहींपर कोई अच्छा-सा लड़का देखकर उसकी शादी कर दी जाय। इस तरह गुलशन अपने माता-पिताके साथ अजमेर चली गई, परन्तु वहां जाकर भी उसका स्वास्थ्य नहीं सुधरा।

तब उसके पिताने उसका विवाह कर देना ही उचित समझा और एक अच्छे घरमें उसकी सगाई ठीक की। जब गुलशनने यह बात सुनी, तब उसने लज्जाको एकबारगी ही त्यागकर अपनी मातासे स्पष्ट कह दिया कि सिवा गोपालके और किसीके साथ विवाह नहीं करूंगी। जब उसके पिताने यह अनहोनी बात सुनी, तब उन्होंने गुलशनको बहुत समझाया; परन्तु सब व्यर्थ। वह अपने निश्चयसे एक इंच भी पीछे नहीं हटी। अन्तमें वे लोग घरसे अपने कलकत्तेवाले मकानमें लौट आये। जिस मनुष्यने एक साल पहले गुलशनको देखा हो, वह आज उसे नहीं पहचान सकता। कहां तो पहलेका सोनेसा चमकता हुआ गोल-मटोल शरीर, कहां आजका कान्तिहीन पीला सूखा अस्थिपंजर! यहां आकर भी उसकी चिकित्साका उचित प्रबन्ध किया गया, परन्तु सब बेकार! एक दिन बातों-ही-बातोंमें मियां साहबने बाबू राधाकृष्णजीका मन टटोलनेके अभिप्रायसे शुद्धिके विषयकी चर्चा छेड़ दी। उन्होंने कहा—"सेठ साहब" हमलोग भी पहले हिन्दू ही थे, इस समय हिन्दूसमाजकी जबर्दस्तीसे हमलोग जाति-बहिष्कृत कर दिये गये। हमारे पिताके लाख चेष्टा करनेपर भी और हर प्रकारका प्रायश्चित्त करना स्वीकार कर लेनेपर भी वे समाजमें सम्मिलित नहीं किये गये; अन्तमें मुसलमान हो गये क्योंकि मेरी माता एक नवमुसलमानकी लड़की थी। मेरे पिता उनके साथ विवाह करनेका वचन देकर मेरे नानाके यहांसे बिना किसीको कहे ही उन्हें लिवा लाये थे। अजमेरमें आकर उन्होंने

हिन्दू-रीतिके अनुसार उनसे विवाह कर लिया, परन्तु यह विवाह लुक-छिपकर हुआ था। जब वहांके पञ्चोंको यह बात विदित हुई तब उन्होंने बड़ा होहल्ला मचाया, पिताजी भी बुलाये गये। उनके ऊपर मेरी माताको त्याग देनेका अनेकों प्रकारसे दबाव डाला गया; परन्तु उन्होंने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया। उनके पास धनकी कमी नहीं थी; इसलिये हर प्रकारसे प्रायश्चित्त करनेको तैयार थे। परन्तु पञ्चोंका साफ यही निर्णय था कि बिना उसको त्यागे तुम समाजमें नहीं रह सकते। अन्तमें हारकर पिताजीने इस्लामधर्म स्वीकार कर लिया, परन्तु जन्म-भरमें मेरी माता या पिता दोनों ही न तो कभी मसजिदमें गये न मांस आदि ही खाया। उनकी रहन-सहन बिलकुल हिन्दुओंकीसी थी। यदि कोई अनजान आदमी घरमें आ जाय तो यही समझे कि यह किसी हिन्दूका ही घर है। जब मैं पैदा हुआ तब भी हिन्दूधर्मानुकूल ही सब रीति-रिवाज हुए थे। मेरे विवाहमें भी पण्डितोंने ही फेरे कराये थे। गुलशनकी माभी हिन्दू-माताकी ही लड़की है। इसलिये आजतक भी हमारा घर हिन्दुओंका-सा ही बना रहा है। यही कारण है कि गुलशन भी हिन्दुओंकी लड़कीसी ही प्रतीत होती है। मेरा विचार है कि यदि आप चाहें तो मेरे परिवारभरको शुद्ध कर लें ताकि, हमलोग फिर अपनी बिरादरीमें मिल जांय।

बाबू राधाकृष्णजी उनके यह विचार सुनकर सन्नाटे में आ गये। सोचने लगे क्या उत्तर दिया जाय; क्योंकि

वे निजमें भी शुद्धिके घोर विरोधी थे। उनके साथियोंमें जब कभी स्वयं भी चर्चा छिड़ती थी तो बराबर ही वे इसके विरुद्ध मत दिया करते थे। उन्होंने कहा—"हमारी समझ इस बातको किसी अवस्थामें भी स्वीकार नहीं कर सकती। "गुलशन के पिताने कहा, यह सब तो ठीक है, परन्तु यदि आप चाहें तो समाज इस बातको अवश्य स्वीकार कर लेगा, क्योंकि इस समय आपके समाजमें भी इस बातको माननेवालोंकी कमी नहीं है। सिर्फ आप जैसे ५-७ पुराने विचारके आदमियोंको छोड़कर सर्वसाधारण शुद्धिकी आवश्यकताको समझने लगे हैं। आप सोचिये, यदि हमलोग मुसलमान ही बने रहे तो आपके हिन्दू-धर्मका विरोध ही करेंगे; परन्तु फिर हिन्दू हो जानेसे आपलोगोंके पक्षमें हो जायंगे। आज भारतवर्षमें सात करोड़ मुसलमानोंकी संख्या है। क्या यह सभी मक्का-मदीनासे आये हुए हैं? आप लोगोंकी नासमझीसे ही तो यह संख्या बढ़ी है? आप सोचते होंगे कि हमलोग मुसलमान बनकर बहुत सन्तुष्ट रहते हैं; पर बात ऐसी नहीं है। आपलोग जब हमारे साथ खान-पान बन्द करके हमें जातिच्युत कर देते हैं तब सिवाय मुसलमान बनजानेके और कोई रास्ता नहीं रह जाता। जहां एक बार मुसलमान हुए कि फिर आपके यहांके दरवाजे बन्द हो जाते हैं। परन्तु अब तो कुछ रुख पलटा है। आज लाखोंकी संख्यामें भटके हुए हिन्दू-भाई फिर अपने पुराने धर्ममें मिलाये जाकर बहुत ही आनन्दसे दिन बिताने लगे हैं। यदि यही सिलसिला जारी रहा, तो

आप देखेंगे कि चालीस-पचास वर्षमें ही फिर हिन्दुओंकी तूती बोलने लगेगी, क्योंकि हिन्दू-धर्मकी खूबियां आप उतनी नहीं जानते, जितनी हम विधर्मी जानते हैं। अपनी चीजकी परख आप नहीं होती, इसलिये आपको चाहिये कि हमारे इस काममें आप सहायता करें। इसका एक यह भी कारण है कि मेरी कन्या गुलशन मुसलमानके साथ ब्याह करना नहीं चाहती। उसका मन आपके पुत्र गोपालके साथ विवाह करनेका है, परन्तु यह बात जबतक आप हमें हिन्दू न बना लें, तबतक होनी असम्भव है। इसीलिये मेरा यह आपसे अनुरोध है कि आप इस काममें मेरी सहायता करके मेरा उद्धार करें। इस प्रकार उनके अनुनय-विनय करनेपर भी बाबूसाहबने किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया, तब हारकर गुलशनके पिता उठकर चले गये।

जिस दिनसे गुलशन और गोपालका मिलना-जुलना बन्द हुआ उसी दिनसे उसका घरमें मन लगना कठिन हो गया। धीरे-धीरे उसकी आदत बदलने लगी। पहले तो वह घरके बाहर जाना पसन्द ही नहीं करता था, परन्तु अब उसने रातको रोज थियेटरोंमें जाना आरम्भ कर दिया। बा० राधाकृष्णजीने उसे बहुत समझाया, पर उसने उनकी एक न मानी, यहांतक कि अब वह खुलेआम वेश्याओंके यहां भी जाने लगा। घर लौटनेमें कभी एक कभी दो बज जाते हैं, इसीलिये सुबह नौ-दस बजेसे पहले बिछौना छोड़ना उसके लिये कठिन ही नहीं, असम्भव-सा हो गया। जब गोपालकी यह अवस्था हो रही थी तब भी वह गुल-

शनको नहीं भूला था। इस तरहकी बुरी आदतें सिर्फ उसके वियोग दुःखको भुलानेके लिये ही डाल ली थी।

अब हमारी कहानीका सिलसिला आरम्भके परिच्छेदसे शुरू होता है। जब बाबू राधाकृष्णजीके उठानेपर भी गोपाल करवट बदलकर सो गया, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने गोपालकी मांके पास आकर उससे कहा,—"आजतक गोपालके बारेमें जो तुमने कहा वही मैंने स्वीकार कर लिया। परन्तु आजसे उसको एक पैसा नहीं दिया जायगा और यही बात तुमसे कही जाती है कि तुम भी उसे कुछ भी मत देना। यदि तुमने अब भी इस बातके विरुद्धाचरण किया तो अच्छी बात न होगी।" इस तरह अपनी पत्नीको कहकर उन्होंने मुनीमजीको भी बुलाकर आज्ञा दे दी कि बिना मेरे कहे उसकी मांके कहनेपर भी गोपालको एक पाई भी न दी जाय। इस प्रकार आजसे गोपालके लिये रुपयोंका द्वार बन्द हो गया। दो-चार दिन तो उसे इस रुकावटसे कुछ भी बाधा मालूम न पड़ी, परन्तु जिस रास्तेपर वह चल रहा था उसमें तो रुपया ही मुख्य था, वहां तो बिना पैसेके एक मिनट भी चलना कठिन था, इसीसे पासके पैसे खतम होते ही सभी संगा-साथी अलग हो गये, और गोपालबाबू अकेले रह गये। उस दिन किसी मंगलामुखीका द्वार उसके लिये नहीं खुला। हारकर सदासे कुछ पहले ही घरमें आकर सो रहा, परन्तु उसको नींद नहीं आयी। यथार्थ बात तो यह थी कि वह थियेटरोंमें रोज जाता था, वेश्याओंके यहां

भी आता था, परन्तु अभीतक सिवाय गाना-बजाना सुननेके और बुरी आदतोंसे बचा हुआ था। यदि दो-चार महीने और भी उसका यह काम बिना बाधा-विघ्न चलता रहता तो परमात्मा ही उसका रक्षक था।

गोपाल पड़े-पड़े सोचने लगा—"यदि गुलशनके पिता मेरे साथ उसका विवाह करना स्वीकार कर लें तो मैं उनका धर्म क्यों न स्वीकार कर लूं। यह बात तो वे भली प्रकार जानते हैं कि गुलशन मेरे सिवाय और किसीसे विवाह करना नहीं चाहती। हम दोनोंके बीचमें यह समाजरूपी दीवाल ही बाधक है, यदि यह बाधा दूर हो जाय तो फिर आगेके लिये हमलोगोंका जीवन सुखसे कटनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है।" इस प्रकारकी बातें सोचते-सोचते सारी रात उसे नींद नहीं आई, भोर होनेपर निबट-नहाकर बहुत दिनोंके बाद वह गुलशनके घर गया। गुलशन सामने ही खड़ी थी। गोपालको आया देखकर वह तो भाग गई। गोपाल सीधा उसके पिताके कमरेमें चला गया। उस समय वे बैठे हुए रामायण पढ़ रहे थे, वह भी पास जाकर बैठ गया। रामायणकी पुस्तक उनके सामने देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ! इस तरह तो वह कुछ पढ़ा-लिखा नहीं था, परन्तु उसके घरमें रामायण आदिका पाठ बराबर हुआ करता था, इसलिये पुस्तक देखते ही वह उसे पहचान गया। उन्होंने बड़े प्रमसे उसके कुशल-समाचार पूछे, फिर उसके सामने ही दो-चार चौपाइयां पढ़कर उसका अर्थ कहने लगे। प्रकरण था, 'सबरी-

के आश्रम' का। भगवान रामचन्द्रको सबरी बेर खिला रही थी। भगवान बड़े प्रेमसे फलाहार कर रहे थे, इसी विषयको बड़ी ही भक्तिसे वे पढ़ रहे थे। भगवान रामचन्द्रपर उनकी इतनी भक्ति देखकर गोपाल अचम्भेमें आ गया।

रामायणका पाठ तो कभी-कभी वह अपने घरकी ठाकुरबाड़ीमें भी पुजारीजीके द्वारा सुना करता था; परन्तु आजकासा रस उसे कभी नहीं आया था। वह भी बड़े प्रेमसे सुनने लगा। जब यह प्रकरण पूरा हो गया तब उन्होंने श्रीरामायणजीको उठाकर आलमारीमें रख दिया और गोपालके पास बैठकर उससे बातें करने लगे। उन्होंने कहा, "देखो गोपाल, भगवान रामचन्द्रजीके यहां न तो जाति-पांतिकी रुकावट थी, न नीच-ऊंचकी। जिसने प्रेमसे उन्हें भजा, उसीके वे हो गये। फिर हमलोग उनको भगवान मानते हुए भी उनके बताये हुए रास्तेपर क्यों नहीं चलते? आदर्श पुरुषोंके चरित्र तो इसीलिये हुआ करते हैं कि संसार उनके अनुसार अपना आचरण बनाये और अपना भविष्य जीवन सुधारे। देखो तुम्हारी और गुलशनका परस्पर कितना प्रेम है। तुम्हारे पिताजीकी एवं मेरी दोनोंकी ही यही इच्छा है कि तुम दोनों सुखी होकर रहो। यदि हम दोनों परिवार भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी न होते तो आजतक तुम लोगोंका गठबन्धन कभीका हो गया होता। परन्तु इसी धर्मकी बाधाने, इसी समाजकी बाधाने तुम दोनोंको अलग कर रखा है। यद्यपि पहले मेरे ऐसे विचार नहीं थे, परन्तु तुम्हारी और गुलशनकी

अवस्था देखकर—तुम दोनों ही दूसरा सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं करते यह देखकर—मेरे विचारोंने पलटा खाया। धर्म-कर्म तो मनुष्यकी सत्यतापर निर्भर हैं, चाहे जिस भावसे भगवानकी आराधना करो—अन्त तो वही है। देखो! हमलोग नामके मुसलमान हैं, परन्तु हमारे घरमें आजतक हिन्दूधर्मके विरुद्ध कुछ भी काम नहीं हुआ, करनेको मन भी नहीं करता। इसलिये दूसरे मुसलमान हमलोगोंकी निन्दा भी किया करते हैं, परन्तु मैं तो अपने सिद्धान्तपर अटल हूं, मुझे तो मेरे भगवानपर पूरा भरोसा है। इस तरह बातें करते-करते वे गद्गद् हो गये। गोपालने देखा उनके नेत्रके कोनेमें एक बिन्दु जल आ गया है। जिस गोपालको हिन्दू होनेपर भी आज तक भगवद्प्रेमका किञ्चित् भी रस प्राप्त नहीं हुआ था, उसी गोपालको एक मुसलमानके मुखसे भगवानकी महिमा सुनकर बहुत ही आनन्द प्राप्त हुआ।

इस तरह कुछ देर भगवद्-चर्चा हो लेनेके बाद गोपालने कहा, "मैं आपके पास इसलिये आया हूं कि यदि आपकी मरजी हो तो गुलशनके साथ मेरा विवाह कर दें, मैं आपके पास ही रहूंगा, मेरे पिता तो मुझे घरमें ढुकने न देंगे। परन्तु क्या करूं, मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि या तो आप यह स्वीकार कर लेंगे, नहीं तो मैं अपने इस जीवनका अन्त कर दूंगा।" गोपालको इस प्रकार अधीर देखकर उन्होंने कहा—"तुम मुझे दो दिनका अवकाश दो, एक बार फिर मैं तुम्हारे पितासे अनुरोध कर लूं।

यदि इसपर भी वे न मानेंगे तो मैं अवश्य गुलशनके साथ तुम्हारा विवाह कर दूंगा, परिणाम चाहे कुछ भी हो।"

आज शहरमें बड़ी हलचल मची हुई है, जिसको देखो वही हालोडेपार्ककी ओर दौड़ा जा रहा है। वहांपर आज शुद्धि-यज्ञ हो रहा है, काशीके बड़े-बड़े पण्डित इकट्ठे हुए हैं। यहांके अजमेरवाले धनाढ्य खुदाबक्सजीके परिवारकी आज शुद्धि होगी, उसीके उपलक्षमें यह शुद्धि यज्ञ हो रहा है। अपने धर्मसे बिछुड़ा हुआ सर्वप्रथम यही परिवार फिरसे शुद्ध करके जातिमें मिलाया जा रहा है। इसीसे भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तोंके नेता पधारे हैं। आज शुद्धि होकर कल ही श्रीमान् सेठ राधाकृष्णजीके पुत्र गोपालदासका विवाह श्रीमती गुलाबदेई श्रीमान् सेठ कृष्णदत्तजीकी कन्यासे होगा। दोनों ओरसे खूब धूम-धामसे तैयारियां हो रही हैं। परन्तु यह मौका कैसे प्राप्त हुआ, उसका किञ्चित् व्यौरा दे देना अनुचित नहीं होगा। जब खुदाबक्सजीने गोपालको अपने विचारोंपर दृढ़ पाया तब उसी दिन दोपहरको फिर वे एक बार बाबूसाहबके पास गये और आदिसे अन्ततक सब बातें कह सुनाईं। पहले तो बाबूसाहब बहुत उछले-कूदे, गोपालको बुलाकर खूब डांटा-डपटा, परन्तु जब उसने किसी प्रकारसे भी अपने निश्चयसे हटना स्वीकार नहीं किया, तब कुछ नर्म हुए, एक बार फिर अपने साथियोंसे मिलकर इस विषयपर विचार करना स्वीकार किया।